ॐ
चिदाकाश की चिन्मयी लीला
स्वामी श्रीमद् रामहर्षणदास जी महाराज

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

॥ श्री सिद्धि लक्ष्मीनिधिभ्यां नमः ॥

चिदाकाश-की-चिन्मयी-लीला

श्रीमद् रामहर्षण दास

स्वामिनाप्रणीतं

चिदाकाश-की-चिन्मयी लीला

लेखक :

श्रीमद् रामहर्षण दास जी

प्रकाशक :
श्रीमती गीता सिंह
पत्नी इं० कृष्ण कुमार सिंह
उपपरियोजना प्रबन्धक
सेतु निर्माण इकाई, मऊ
मऊ (उ० प्र०)

श्रीमती गीता सिंह

प्रथमावृत्ति : १९९४

न्योछावर : ४० रु० मात्र

मुद्रक :
श्री वैष्णव प्रेस
दारागंज, इलाहाबाद
दूरभाष-६०७४६३

आभार :

(१) इं० डी० आर० विद्यार्थी
उपपरियोजना प्रबन्धक
सेतु निर्माण इकाई, रायबरेली।

(२) इं० बी० डी० द्विवेदी
अवर अभियन्ता
सेतु निर्माण इकाई, रायबरेली।

ग्रन्थकार
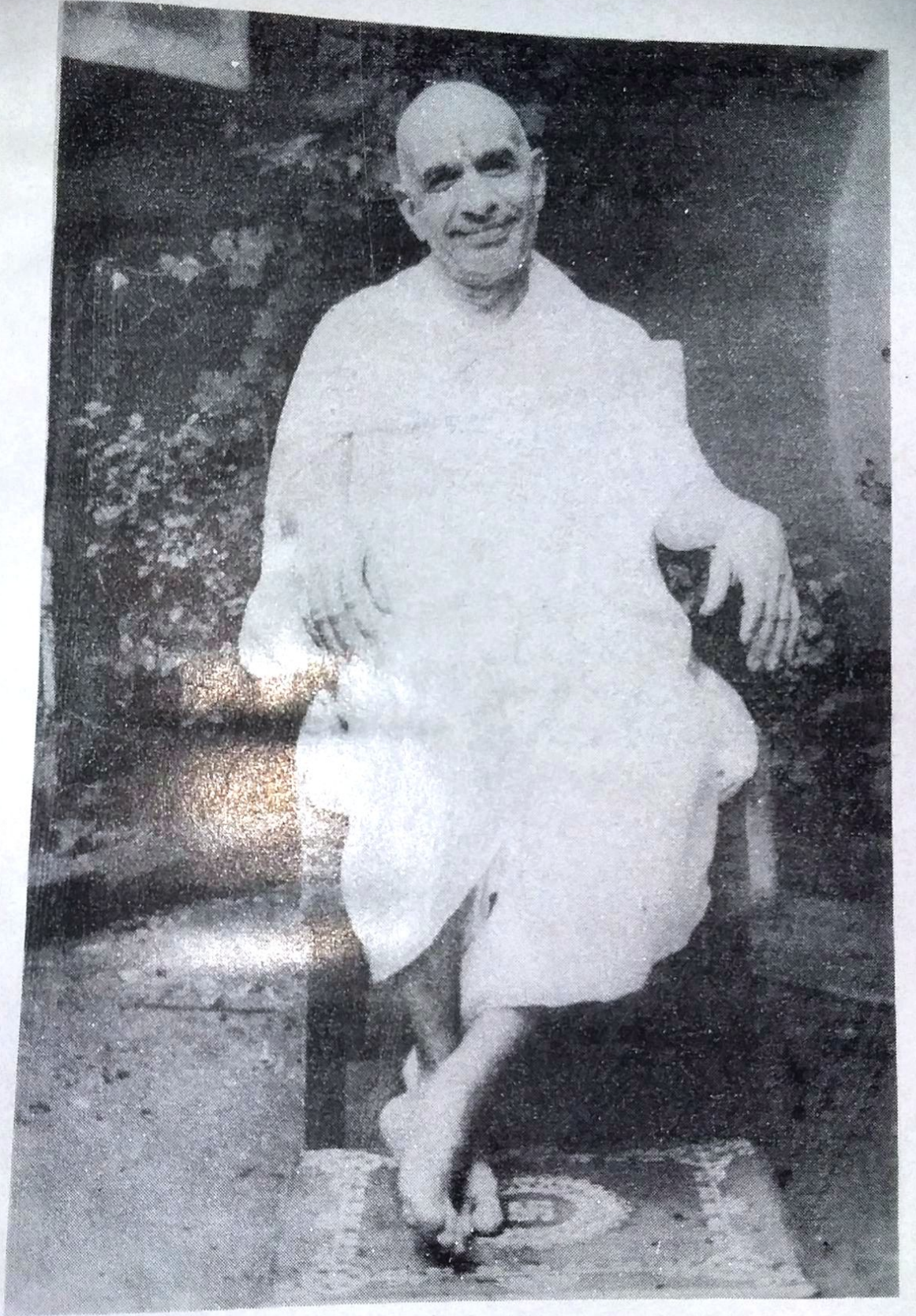
अनन्त श्री विभूषित, प्रेममूर्ति, पंचरसाचार्य

श्रीमद् स्वामी राम हर्षण दास जी महाराज

ॐ नमः श्रीसीतारामाभ्याम्
ॐ नमः रसिक जन वल्लभाभ्याम्
ॐ नमः सिद्धि-मन-मानस बिहारिभ्याम्
ॐ नमः लक्ष्मीनिधि प्राणप्रियतराभ्याम्
ॐ नमः वेदान्तसार-सिद्धान्त-रस रसिकेश्वराभ्याम्

卐

कनक भीत पर जटित हीरक आदि नव रत्नों की पंक्तियों से चित्रित चित्रावली, सम्पूर्ण कक्ष को प्रकाशित करती हुई, अन्य प्रकाशों को अपने में आतमसात कर रही है। विस्तृत कक्ष में एक विशाल स्वर्ण-पर्यङ्क कामदार हाथी दाँतों के अङ्गों से आभूषित उचित स्थान पर रखा हुआ अपनी आभा से सुरपति एवं रतिपति के भाग्य-वैभव को विलज्जित सा कर रहा है, आवश्यकीय सुख संवर्धिनी सामग्रियाँ कक्ष में सजाकर उचित स्थानों में रखी हुई, भवन की भव्यता में और-और निखार ला रही हैं, स्वर्णमय मणि-माणिकों से जटित झाड़-फन्नूस एवं दीपमालिकायें कक्ष की अप्रतिम शोभा का उल्लेख-सी करती हुई, दर्शकों को अपने-अपने मन को अमन बनाने के लिये आमंत्रित कर रही हैं, भूमि में भव्य-भव्य बहुमूल्य शोभा सम्पन्न सुकोमल गलीचे बिछे हुये हैं, कमनीय कक्ष के चारों ओर के गवाक्षों से पुष्पों की भीनी-भीनी सुगन्ध प्रत्येक ओर लगी हुई गृह-वाटिका से आ रही है, कक्ष भी इत्र सिंचित होने के कारण सुखदायी सामयिक सुगन्ध से, वसन्त का स्वागत करने के लिये उद्यत-सा जान पड़ता है, शीतल, मन्द, सुगन्ध त्रय-वायु कक्ष का सेवन मनोनुकूल कर रहा है एवं प्रकारेण कमनीय कक्ष को समुन्नतशील बनाने के लिये बहुत-सी नव किशोरियाँ विविध वाद्यों के द्वारा विविध राग में संगीत सुधा की वर्षा कर रहीं हैं, नृत्य कला की भाव-भंगिमा एवं हृदय की पवित्र भावनायें संगीत के प्रतिपाद्य विषय का साक्षात् दर्शन करा रहीं हैं। पलङ्ग पर बैठी हुई एक मिथुन जोड़ी संगीत-सुधा के सागर में मज्जनोन्मज्जन करने में व्यस्त है, साथ ही एक ओर श्याम-गौर वपुष वाली जोड़ी घन-विद्युत की आभा का तिरस्कार करती हुई लुक-छिपकर संगीत-सुधा के पान का अनुभव चोरी-चोरी से करने में ही अपना गौरव समझती है।

पद :—

मन्द मन्द पग धरति, सिया बाजति पैंजनिया।
नख शिख षोड़ष श्रृङ्गार, सरस्वति वर्णत न पार,
जय जय जय करत शोर, त्रिभुवन धनि धनिया ॥१॥

रंग भूमि अलिन बीच, जात चली रसहिं सींच,
भूमि गगन नखत चन्द्र, शोभा उमगनियाँ ॥२॥

निम्न नयन राम देखि, रामहु सिय यथा पेखि,
डूबि रसहि उबरब उर, दोऊ नहिं अनियाँ ॥३॥

चहुँ दिशि हर्षण अँजोर, मैं-तै काहुहिं न भोर,
गुण-गण गावहिं अलि सब, सीता सुख सनियाँ ॥४॥

संगीत से प्रभावित पर्यङ्कासीन दम्पति के विशुद्ध अन्तःकरण पद के अर्थ में विलीन हो गये तदनुसार उन धन्याऽधन्य रासकथा के रसिकों के चिदाकाश में उक्त संगीत का दृश्य चमकने लगा, अतीत काल की लीला का उदय वर्तमान में हो गया अतः वे दोनों चिद् प्रदेश की चिन्मय लीला में लीन हो गये तदनन्तर नवल नेह के हिंडोरे में झूलझूलकर परमैकान्तिक सुख के सिन्धु में समवगाहन करने लगे। ज्ञानियों के ज्ञानानन्द की, योगियों के केवलानन्द की तथा उन्मनावस्था के उन्मनानन्द की स्थितियाँ, वर्तमान परमानन्द की ओर देखने में असमर्थ होकर, जहाँ-तहाँ अपना-अपना मुख छिपाकर, अदृश्य की ओट में समाविष्ट हो गई फिर क्या कहना ? आनन्द की वे युगल मूर्तियाँ अपने-अपने हृदय के आनन्द सिन्धु की लहरें मुख, श्रवण, नेत्र और रोम-रोम के द्वारा उछाल-उछाल कर परस्पर डुबाने के लिये प्रयत्नशील हो गई।

अहो! आश्चर्य! महाआश्चर्य! अनङ्ग अङ्गात्मिका अनेक सरिताओं से प्रवहमान, सौकुमार्य मिश्रित माधुर्य की अनन्त-अनन्त जलराशि, रस-स्वरूप रघुनन्दन के सौन्दर्य-सुधा-सागर में मिलकर गगनचुम्बी उत्ताल तरंगों के बाहुल्य से रंगभूमि-तटवर्ती जन समाज की विविध वृक्षावलियों को उखाड़-उखाड़ अपने में आत्मसात करके, स्वपति समुद्र को भेंट समर्पित करती-सी स्वयं को समर्पण कर रही हैं, अस्तु, उस सारतम सौन्दर्य-सिन्धु ने स्वयं आनन्द की अनुभूति से, उन्मत्त कोलाहल मचा मचाकर अन्य वार्ता सुनने के लिये, सभी प्राणियों के कर्णों को बधिर बना दिया है, हम लोगों के शरीर-वृक्ष भी उक्त जलराशि की तरंगों के थपेड़े खा-खाकर कम्पायमान हो रहे हैं अतः मूल से उखड़, सौन्दर्य-सागर के अगाध जल में डूबकर अपना

अस्तित्व मिटाने के लिये यत्नशील से दिखाई देते हैं अतएव अब सदा के लिये जल-समाधि इन्हें लेनी ही पड़ेगी," इस प्रकार जनक सुवन लक्ष्मीनिधि ने अपनी प्राण प्रियतमा श्रीसिद्धि कुँवरि जी से कहा।

"प्राणवल्लभ ! अपने ध्यान की अमल आँखों से प्रमोद बन बिहारी कौशल्यानन्दवर्धन जू की ओर देखने की चेष्टा करें, वे अपने अलौकिक सौकुमार्य सुधा स्वाद से संयुक्त अनन्त सारतम सौन्दर्य के समुद्र को हमारी विदेह वंश वैजयन्ती श्री राजकिशोरी जी स्वरूपा आदिशक्ति के अभिषेकार्थ सर्वभावेन सम्पूर्णतया सर्मपित कर किसी अपनी अभीष्ट कामना की सिद्धि के लिये, उनके चरणप्रान्त में दृष्टि निक्षेप करते-से दृष्टिगोचर हो रहे हैं, मेरा यह अनुमान-प्रमाण सर्वथा सत्य है कि उनके हृदय में मेरे ननदोई व आपश्री के बहनोई बनने की मधुर कामना के सूर्य ने पूर्णकाम के सुन्दर श्याम शरीर को अपनी किरणों द्वारा प्रकाश स्वरूप बना दिया है, धन्य है हमारी ननँद जू के नख-शिखान्त काय वैभव को, जिसके तन छाया का सुहावना, सुनहरा दृश्य नीलमणि की कान्ति को विलज्जित करता हुआ अपने में आतमसात् कर रहा है।

(इस प्रकार अपने सर्वस्व पतिदेव से बात करती हुई श्रीसिद्धि जी, श्रीमैथिली जू की मनोहर स्मृति से संज्ञाशून्य-सी हो जाती हैं। श्रीलक्ष्मी-निधि जी उन्हें प्रेम के सिन्धु से निकालकर कुछ कहने के लिये अपनी प्यारी पत्नी का स्पर्श करते हैं।)

प्रियतमें ! सभा के समस्त नर-नारियों की आँखों से निष्क्रमण कर पिताश्री के परमपूज्य पूर्वज श्री निमिमहाराज ने सबको निर्निमेष बना दिया है देखिये न ! उपस्थित सभी सुर, नर, मुनि समुदाय के सुन्दर सुहावने बड़े-बड़े नेत्र टकटकी लगाकर श्रीदशरथनन्दन एवं जनकनन्दिनी जू का दर्शन अतृप्त भावना से भावित होकर कर रहे हैं। अहो ! आज का यह चमत्कार पूर्ण दृश्य इतिहास के पन्नों में स्वर्णाक्षरों द्वारा सर्वाङ्गीण अङ्कित रहेगा, जिसकी छाप युग-युगान्तरों एवं कल्प-कल्पान्तरों तक अमिट ही नहीं अपितु नित नव-नव नया निखार लाती रहेगी। ब्रह्मसभा, देव-सभा, साधु-सभा एवं बड़े-बड़े नरपति महाराजाओं की सभाओं में इसके अमल यश का सादर, सप्रेम गान, जब तक सूर्य-चन्द्र हैं, होता रहेगा, इसमें संशय नहीं। (यह कहकर श्रीलक्ष्मीनिधि जी भाव के समुद्र में अस्त होकर पुनः धैर्य धारण कर ऊपर उठते हैं।)

हे सीताग्रज ! तब तो सीतास्वयम्बर की पृष्ठभूमि मिथिला होने से युगल नृपति किशोर-किशोरी के यशोगान के साथ-साथ उपर्युक्त समाजों व सभाओं में श्री किशोरी जू के जन्मभूमि की भी महत्वपूर्ण कीर्ति-पताका श्री गंगा जी की धवल धारा के समान त्रिभुवन में लहरायेगी। अहो ! सिद्धि कितनी भाग्यशालिनी है, जिसे आपकी अनुजा, भाभी-भाभी प्यार से पुकारती हुई अपनी भ्रातृ-वधू के अङ्क में आसीन होकर, उससे, उसी प्रकार लिपट जाती है, जैसे परस्पर दो लतायें। (कहकर सिद्धि जी प्रेम विभोर हो जाती हैं।) पुनः प्रकृतिस्थ होने पर ...

हे प्रेम पथिके ! श्री विदेहराज नन्दिनी जू के सम्बन्ध से मिथिला ही की नहीं अपितु समस्त मिथिलावासियों के भाग्य-वैभव को देखकर, भाग्य के विधाता ब्रह्मा को भी दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ेगी कि पुनः वैदेही के माता-पिता एवं भाभी के विषय की भाग्य वार्ता के स्मरण से भूमि-तिलक मिथिला के महत्व ने ही चक्रवर्ती नन्दन श्रीराम जी को मिथिला मही पाँव पयादे आने को आतुरता पूर्ण बाध्य कर दिया है। (ऐसा कहकर जनक-सुवन हर्षातिरेक में स्थित हो जाते हैं।)

प्राणेश्वर ! श्रीमान् भोलेनाथ के वज्र सम कठोर धनुष का भंजन करके क्या दशरथनन्दन जू ननदोई बनने का सौभाग्य सिद्धि को प्रदान कर सकेंगे ? यदि ऐसा न हुआ तो ? (मूर्छित होकर सिद्धि जी गिर जाती हैं, श्रीलक्ष्मीनिधि जी संभालकर)।

प्रिये ! आचार्य-वचनों में आशंका का राहु, प्यारी के मन के चन्द्र को ग्रसने के लिये कब अन्तःकरण के गगन में प्रवेश कर गया है ? आश्चर्य ! मेरी अभिन्न हृदया अर्धाङ्गिनी के हृदय कोश से आचार्य वाक्यों में अटल विश्वास का बहुमूल्य रत्न किसने, किस समय निकाल लिया ? आश्चर्य ! महाआश्चर्य !! उसी हृदय कक्ष का पूर्ण अधिकारी मैं, वहाँ बैठा हुआ रत्न की चोरी हो जाने की जानकारी भी न प्राप्त कर सका, रक्षा करने की वार्ता कौन कहे ? अतएव यह सब मेरी असावधानी और आलस्य का ही दुष्परिणाम है कि आज मेरी प्राण प्रियतमा अटल विश्वास रूपी रत्न के अभाव से, अपने प्राण प्रियतम की आरती उस जगमगाते रत्न के प्रकाश बिना कैसे उतार सकेगी ? कष्ट ! महाकष्ट !! (श्री लक्ष्मीनिधि जी विचार मुद्रा में निमग्न हो जाते हैं, श्रीसिद्धि कुँअरि जी प्यार से कुँअर लक्ष्मीनिधि जी का स्पर्श कर करके)।

मेरे हृदय देश के सम्राट ! आपश्री की सुरक्षा व्यवस्था सम्यक् प्रकार से सजगतया होने से, आपके देश का एक तृण भी, जो आपके उपयोग का है, कभी, कोई, किसी प्रकार से नहीं ले जा सकता, अस्तु, विश्वास का अनमोल हीरा, दासी के हृदय-कोश में ही अपने सहज स्वरूप से स्थित है।" तो श्रीराम जी धनुष का भंजन करके हमारे ननदोई बनने का सौभाग्य क्या हमको प्रदान कर सकेंगे ? यह आपके मुख विनिश्रित वचन क्या शंकास्पद नहीं हैं ? अगर नहीं हैं तो इस वाक्य का प्रयोजन किस अर्थ को प्रकाशित करता है।" लक्ष्मीनिधि जी के ऐसा कहने पर ...

मेरे हृदय बिहारिण ! आपश्री की दासी के सभी हृदगत भावों का ज्ञान क्या आपके ज्ञानालोक से भिन्न है ? फिर भी आपके प्रश्न का उचित उत्तर देना. आप ही की प्रसन्नता के लिये समीचीन सेवा के अतिरिक्त और अकिञ्चित होगा, समझती हूँ, अस्तु, श्रवण करें, मेरे प्रियतम ! रंगभूमि-सभा-संस्थित-माधुर्य-महोदधि अनन्त सौन्दर्य-सौकुमार्य नामक दो समुद्रों के साथ अपनी मन्द-मन्द मुसकान एवं चित्त में चुभने वाली चितवन की उत्ताल-उर्मियों को उछाल-उछालकर अठखेलियाँ खेलें और तटवर्ती भूमि में उसकी एक बूँद न पड़े, यह कैसे संभव हो सकता है ? धृष्टता क्षमा हो नाथ ! माधुर्य क्या ऐश्वर्य को पराजित कर, अपने अस्तित्व के कारागार में बन्दी नहीं बना लेता, उसको शिर उठाने का क्या कभी अवसर देता है ? क्या आपश्री के चित्त को माधुर्य के स्पन्दनशील शीतल सुखावह वायु ने स्पर्श नहीं किया ? क्या आपश्री का मन माधुर्य की महानता विचार कर क्षणार्ध के लिये, दासी की भाँति 'धनुष कैसे टूटेगा' असमञ्जस में क्या नहीं पड़ा, धारा में डगमगाती हुई नाव के समान तथा उसी क्षण आचार्य-वचनों की सत्यता का स्मरण कर वायु के सहारे, नाव की भाँति पार नहीं लग गया ? अगर यह सत्य है तो आप श्री अपनी स्थिति के अनुसार अपनी अनुगामिनी एवं सहधर्मिणी की स्थिति को अवलम्ब समझ लें क्योंकि उसका अन्तःकरण उसका नहीं है अपितु उसके अधिपति व अपनी शक्ति-प्रेरणा से उसे चलाने वाले आपश्री का है। यदि आप माधुर्य महिमा के स्पर्श से अपने मन को बचा लेते तो दासी का मन कभी भी शंका की विभीषिका का दर्शन न करता।" इस प्रकार अपनी अभिन्न-हृदया-हृदयहर्षिणी की उत्तम स्थिति की अनुभूति से हर्षित उनके पतिदेव, स्वप्रिया का स्पर्श कर, वाक् विसर्ग की सुधा सिद्धि जी के कर्णों में उड़ेलने लगे।

"हृदयज्ञे ! आप अपने समर्पित अन्तःकरण की परम विशुद्धता से मेरे हार्द भावों का ज्ञान कर लेती हैं क्योंकि उनका प्रतिबिम्ब आपके अन्तः-

करण की आरसी में पड़ता है अतएव मेरे मनोभाव आपसे छिपे नहीं रह सकते और न मैं उन्हें छिपाने में ही कभी प्रयत्नशील ही रहा। शंका-वायु के झकोरे से अचानक झकझोरे जाने के कष्ट का किञ्चित काल अनुभव किया था मैंने, जो अत्यन्त मर्मभेदी था, उसी वायु के थपेड़े से आहत, आप-को समझकर उससे शीघ्र त्राण पाने के लिये, गुरु-वचनों को आपकी स्मृति में लाने का प्रयत्न किया था, आचार्यश्री की अनुकम्पा से हम दोनों स्वस्थ हैं। अब तो श्याम-मेघ द्वारा मिथिला में नित नव आनन्द की वर्षा हुआ करेगी जिससे जन-जन के हृदय-भूमि की खेती दिन-दूनी, रात-चौगुनी लहलहायेगी। आनन्द ! आनन्द !! महा आनंद !!! कहकर अपनी प्रियतमा के हर्ष को समुन्नतशील बना दिया; तत्पश्चात् श्री लक्ष्मीनिधिजी, श्रीसिद्धि जी की वाणी का मधुर पेय पीने लगे।

'सत्य संकल्प ! आपश्री के स्वप्न काल का अतीत दृश्य आज जाग्रत के वर्तमान में स्थित हो गया है, जिससे आपश्री के अकेले का परमैकान्तिक अनुभूत आनन्द समस्त मिथिला के नर-नारियों के लिये ही नहीं अपितु त्रिभुवन के नेत्रों का विषय बन रहा है। आपश्री के आर्दवीय औदार्य की बलिहारी। आप अकेले इस रसमय पदार्थ का अनुभव न कर, अपने संकल्प से सर्व जगत को वितरण करके ही, उसकी अनुभूति करने की इच्छा किये हैं। दासी को आपने सर्वभावेन धन्यातिधन्य बना दिया है जब श्री नृपति किशोर-किशोरी जू का दर्शन अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव कराकर, भव-सुख के बीज को सर्वथा भस्म करने वाला है कि पुनः इनके स्पर्श, वार्तालाप व सहज सम्बन्ध प्राप्ति से ······ कहकर लक्ष्मीनिधि-वल्लभा प्रेमातिरेक में स्थित हो जाती हैं। उन्हें सम्हालकर सिद्धि के प्राणेश्वर के उद्गार फूट-फूटकर निकलने लगते हैं।

मनोहरे ! अहो ! विधिना कितना बुद्धिमान है, हमारी ललित लड़ैती अनुजा के अनुरूप ये दशरथनन्दन हैं, जिन्होंने अपनी अभिरामीय आभा से सबको अपनी ओर आकर्षित कर लिया है, इनकी दृष्टापहारी दृष्टि, कला एवं पुंसामोहन रूपोदार्य कोटि-कोटि कन्दर्प-दर्प दलनकारी है। शत-शशि-विजित वरानन पशु-पक्षियों को जब अतीव प्रिय है, तब सुरनर-मुनि समुदाय की कथा क्या कही जाय, ये तो सब बड़भागी रूप लावण्य के अनुरागी सहज ही होते हैं। देखिये, परम वितृष्ण ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जी महाराज युगल कुमारों के मध्य विराजे हुए, अपनी अतृप्त आँखों से श्री दशरथनन्दन के मुख-मयङ्क का बार-बार अवलोकन करते हुए भी चकोर की भाँति अघाते से नहीं दीख रहे हैं। ऋषि प्रवर ही क्या ? रंगस्थल में

आसनासीन सभी नर-नारियों का समाज, अपलक आनन्दघन रघुनन्दन की मुखश्री का अवलोकन करके, अमानवीय आनन्द की अनुभूति कर रहा है। अपनी मनःस्थिति को क्या कहूँ ? यदि इनसे मिलने में मैं अबाधित स्वतंत्र हो जाऊँ तो इन्हें अपनी हृदय-गुफा की विहार-भूमि सर्व भावेन सर्मपित कर, वहाँ से निकलने का अवसर ही न दूँ, इतना कहते ही श्री लक्ष्मीनिधि हृद्देश में कल्पनानुसार स्थित होकर, गाढालिङ्गनादि जनित आनन्द की घनता का अनुभव करने लगे, भाव समाधि ने वरण कर उन्हें बाह्य-संज्ञा शून्य कर दिया, तदुपरान्त श्री श्रीधर कुमारी सिद्धि जी प्रकृतिस्थ कर, अपने प्राणवल्लभ से मधुर-मधुर वाणी में कहने लगीं।

"हे मधुर प्रिय ! योगिराज सिरताज पद प्रतिष्ठित सहज वैराग्य-शील ब्रह्मविद वरिष्ठ हमारे श्वसुर जी की ब्रह्मज्ञान की गठरी एवं वितृष्ण वैशेष्य के पदक को, श्रीराम के माधुर्य सारतम सौंदर्य-दर्शन के प्रथम क्षण में कहीं उपेक्षित दृष्ट्या त्याग देना पड़ा हो सो नहीं अपितु पूर्वजों से अर्जित वह सहज प्राप्त दिव्य-सम्पत्ति आपके श्रीमान पिता जी का साथ छोड़कर अन्यत्र चली गई तो फिर आपके विषय की वार्ता की कथा क्या कही जाय ? क्योंकि आप अपने सद्‌गुरु के श्रीमुख से सगुण और निर्गुण, परस्पर विरोधी धर्मों का युगपद परब्रह्म में रहना निरूपाधिक सुन चुके हैं तथा सगुण साकार ब्रह्म के रसमय विग्रह की माधुरी में संलीन होकर उसके आनन्द की अनुभूति भी भली भाँति कर चुके हैं अतः आपको वर्तमान माधुर्य-महोदधि में मज्जनोन्मज्जन करना कौन आश्चर्य है ! आपकी होने से मुझ साधन हीना की हृदय-कुटिया भी माधुर्य-सरोवर बन गई, जिससे समय-समय में माधुर्य का पेय पीने के लिये आपको मिलता रहेगा, कहकर तत्स्मृति में खो जाती हैं। श्री लक्ष्मीनिधि जी अपनी प्रियतमा से अभिन्न हृदय माधुर्य स्वाद का अनुभव करते हुए कुछ कहने की चेष्टा कर रहे हैं।"

"हे माधुर्य महिमान्विते ! अब तो यह माधुर्य-महोदधि अपना ही है, इसमें संदेह नहीं, कुछ ही क्षणों में यह शंकर का कोदण्ड दो खण्डों में विभाजित हो जायेगा, श्री चक्रवर्ती नन्दन जू के कर-कमलों से। तदनन्तर मेरी अनुजा श्री सीता के कर-कमलों से पहनाया हुआ जयमाल, उनके गले का भूषण बना देखकर आपके परमानन्द की अनुभूति का दर्शन, आपके पति-परमेश्वर को शीघ्रातिशीघ्र होगा। शुभ सगुनों का बाहुल्य मेरी कही हुई वाणी की सत्यता का सूचक है, अविलम्ब शुभ मुहूर्त में वेद-विधि, लोक-विधि और कुल-विधि को अपनाकर त्रिभुवन-मन-मोहक चमत्कार पूर्ण विवाह युगल नृपति किशोर-किशोरी का होने वाला है, अहो आनन्द !

महानन्द !! अपनी भगिनी श्री सिया जू के विवाह सम्बन्धी मंगल कार्यों के करने की सेवा प्राप्त कर, देव-कुमारों का स्पर्धा-पात्र बन जाऊँगा मैं। मेरे भाग्य का सूर्य उदय होकर अब अस्त न होगा, ऐसी अपनी प्रीति-प्रतीति है, कहकर जनक कुँवर भाव विभोर की स्थिति में समाविष्ट हो जाते हैं। सिद्धि जी उन्हें सचेष्ट कर कुछ कहने के पहले ही प्रेम चिन्हों से चिह्नित हो जाती हैं, पुनः धैर्य धारण कर........

"दासी के सर्वस्व ! आपश्री की इस गृह परिचारिका को आपश्री से अधिक कैंकर्य करने को मिलेंगे, अपनी प्यारी-दुलारी ननँद के विवाह में, जिसका स्वप्न अपने मनोज्ञ मनोरथ के साम्राज्य में कब से देख रही हूँ मैं। अब उस स्वर्णिम समय की संप्राप्ति में ब्राह्मणों देवताओं और अतिथि-अभ्यागतों की दान-मान से सेवा करके श्री युगल किशोर-किशोरी का नित नव मंगल मनाऊँगी। वैवाहिक विधि के अनुसार नव दम्पति चार दिन कोहवर भवन में निवास कर, अपनी भाभी व सरहज को ही अपनी अष्ट-यामीय सेवा लेने का सौभाग्य प्रदान करेंगे। अहो ! यह सिद्धि वास्तव में अपने नँनद-नँनदोई के दर्शन-स्पर्शन व सेवा-संप्राप्ति से सिद्ध हो जायगी और आपश्री के अर्द्धाङ्गिनी के अनुरूप अपने पति परमेश्वर को आनन्द की अनुभूति कराने में, उनकी सहायिका सखी सिद्ध होगी, आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!! त्रिभुवन में आनन्द !!!" कहकर सिद्धि जी आनन्द निमग्न हो जाती हैं। उनके आत्माधार उन्हें सचेष्ट कर कुछ कहने की मुद्रा में स्थित से लग रहे हैं।

"आनन्दाभिलाषिनी ! प्रियतमे ! ऐसी मिथुन जोड़ी न किसी सुर, नर, नागों के समाज में कभी किसी के दृष्टि एवं श्रवण-पथ की पथिका बनी और न वर्तमान में है, न होने वाली है। अहहह ! मिथिला की महिमा अवर्णनीय है क्योंकि इन अनुपम युगल मूर्तियों का दर्शन करने का सौभाग्य त्रिभुवन को इस निमि नगर में ही प्रथम-प्रथम प्राप्त हो रहा है। वैवाहिक बारात के वैशिष्ट्य व नव हुलह-दुलहिन वेष में युगल नृपति नन्दन-नन्दिनी जू के चमत्कार पूर्ण वैवाहिक क्रिया का दर्शन कर-करके, अपने को कृतार्थ समझने वाली त्रिभुवन वासियों की टोलियों से भूमि और आकाश ठसाठस भर जायेगा, अवनि और आकाश की एकता के दृश्य का दर्शन दर्शकों को हर्षोत्पादक पद-पद में सिद्ध होगा। अपने को चक्रवर्ती जी का परम प्यार तथा वशिष्ठादि गुरुजनों का आशिर्वाद एवं चारों चक्रवर्ती कुमारों का अभेद हृदयालिंगन अनवरत मिलता रहेगा, अस्तु मुझे न जाने किन-किन आनन्द

प्रदायिनी स्थितियों का आलिङ्गन करना अवश्य संभावी होगा, वे सब अप्रमेय, अनुपमेय और अनिर्वचनीय स्थितियाँ होंगी, इसमें सन्देह नहीं। अहो ! आनन्द ! आनन्द !! महान मधुर आनन्द !!" कहकर 'आनन्दं ब्रह्म' की स्थिति में स्थित हो जाते हैं। श्री सिद्धि जी कुछ काल प्रतीक्षा करके अपने प्राणबल्लभ के प्रकृतिस्थ होने पर अपनी मधुर वाणी का विनियोग करती हैं।

"प्राणवल्लभ ! आपश्री प्रथम से ही परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान में, "मैं, मेरे" का समर्पण कर भगवदर्थं कर्मों का अनुष्ठान, आसक्ति और फल की कामना से रहित बिना अहं के किया करते हैं, अस्तु वही परब्रह्म परमात्मा अपनी कृपा और औदार्य के विवश होकर, श्री राम रूप में आतुर होकर, आपको अपना आलिङ्गन देने और आपका आलिङ्गन लेने के लिए हो मिथिला की रंगभूमि में अपना दर्शन-दान दे रहा है। विवाहोपरान्त श्याल-भाम की परस्पर प्रीति पयस्विनी तटवर्ती-परिकरों की हृदय-भूमि को आत्मसात करके क्या से क्या कर देगी। आप दोनों का मज्जन, अशन-शयन और मिथिला-बिहार देख-देखकर सिद्धि अपने सौभाग्य सुषमा की स्तुति स्वयं करने को बाध्य हो जायगी। अहो ! अपने ननद-नंनदोई तथा दोनों श्याल-भाम और मातृ-भगिनी की आरति उतारना तथा मंगलानुशासन करना, अपना सहज स्वरूप समझ तत्सुखसुखित्वम् की भावना से भावित होकर, उस असीमानन्द का अनुभव वह करेगी जो सर्वश्रेष्ठ सुगन्धित शरीर बाली सुर-सुन्दरियों को दुर्लभ ही नहीं अपितु अप्राप्य है।" कहते-कहते भावी आनन्द की स्मृति में, अपने को खोकर, कुछ काल में अपने प्राण-प्रियतम की रस-सिक्त मधुरतम वाणी को श्रवण करने लगीं।

"हे हृदयहर्षिणी ! आप दूरदर्शी सन्नारी हैं जो अपने पतिदेव को नर से नारायण बनाने में सर्वथा समर्थ हैं। आपका भाग्य-वैभव विधाता के आधीन नहीं है अपितु जिसके आधीन है, वह रस स्वरूप वेद-वर्णित परब्रह्म परमात्मा स्वयं ही, आपके विशुद्ध हार्द स्नेह से रीझ कर आपको अपना सर्वस्व समर्पित करने चला आया है, अब आप उस रिझवार से सम्बन्धानुसार प्रेम से ओतप्रोत होकर, वार्तालाप हास-विलास व उस सेवा का सुअवसर प्राप्त करेंगी, जिसे पाने के लिये उमा, रमा और ब्रह्माणी का मन भी सर्वदा ललचीला बना रहता है। अधिक क्या कहूँ ? अपनी प्रियतमा के सौभाग्य को देखकर, कहीं आपके प्रियतम का मन भी आपके कैंकर्य-विधि एवं तज्जनित सेवा-सुख से स्पर्धा न करने लगे।" कहते-कहते सिद्धि-सुख में

स्वयं समाविष्ट हो जाते हैं। सिद्धि जी भी पतिप्राणा होने से उनके मन में स्वयं के मन को स्थित कर, दम्पति अमन होकर समाधिस्थ हो जाते हैं।

"करुणे ! तुमने देखा ? रसप्लुत दम्पति तुम्हारे मुख से विनिश्रित-सुमधुर गीत सुनकर, उसी गीत के अर्थ में स्थित होकर अतीत को वर्तमान में देखते-देखते एवं तद्विषयक वार्ता करते-करते भाव-समाधि में स्थित हो गये हैं, देखो न ! दोनों के शरीर से हर्षातिरेक के चिन्ह स्पष्ट दृष्टिगोचर हो गये हैं," ऐसा चित्रा ने कहा।

"सखि ! रस-सिंधु में सराबोर दम्पति संगीत-लहरी में लीन होकर, अपनी अनुचरियों को भुलाये हुए जिस दिव्य देश में विचर रहे हैं, वहाँ मेरे मन वाणी की शक्ति जा ही नहीं सकती। आपश्री स्वामिनी जू की अन्तरङ्गा हैं, अतः उनके अन्तःकरण का चित्र, चित्रा जी के अन्तःकरण में चित्रित हो गया होगा, इसलिये वहाँ से इन्हें निकालना, हम सब सखियों के सामने उपस्थित कर, दोनों के विकसित मुखकमल का दर्शन दान देने की यश पात्री बने आप, अन्यथा हम सब सखियों के प्राण पखेरू शरीर के पिंजड़े में तड़फड़ाकर उड़ने की चेष्टा को सफलीभूत बना लेंगे, करुणा की करुण पुकार सुनकर।"

"करुणे ! करुणा पूर्ण ध्वनि में श्रीसीताराम नाम-संकीर्तन सखियाँ के समवेत स्वर से नृत्य-वाद्य के साथ प्रारंभ करो, जिसका परिणाम यह होगा कि हमारे हृदय के मेहमान, हमलोगों की आर्तनाद से शीघ्र द्रवित हो जायेंगे क्योंकि वे करुणा के अप्रतिम कोश हैं और अपने श्याल-सरहज के हृदय-भीति में चित्रित दृश्य को त्वरा के साथ वहाँ से तिरोहित कर देंगे, बस ! कार्य-सिद्धि सम्मुख उपस्थित हो जायगी। दम्पति अपने हृदय धन को वहाँ न देखकर विकलता से जग जायेंगे, तब हम सब सुफल मनोरथा होकर, अपने-अपने कैंकर्य से प्रिया-प्रीतम को प्रसन्नकर, उनके विकसित मुखारविन्द का दर्शन कर आनन्द की अनुभूति करेंगी।"

चित्रा जी के मुख से उपर्युक्त उपाय को श्रवणकर, सब सखियाँ समुचित एवं समीचीन तथा समवेत स्वर से करुणापूर्ण संकीर्तन करने लगीं।

प्रभु-प्रेरणा से ध्यानस्थ दशा की अभाव स्थिति को न सहनकर युवराज लक्ष्मीनिधि जी सपत्नीक प्रकृतिस्थ होकर, सब सखियों, दासियों को नाम संकीर्तन से विरत होकर, अपने को प्रणाम करते हुए पाते हैं, आश्चर्य चकित से सबकी ओर दृष्टि निक्षेप करके........"अहो ! अभी-अभी कहाँ था मैं ?

क्या देख रहा था ? अरे ! वह दृश्य कहाँ अदृश्य हो गया ? किस आनन्द के सिन्धु में अवगाहन कर रहा था ? क्यों हमारी प्रियतमा को उक्त सब बातों का ज्ञान है ? नहीं-नहीं ····· अपने प्राणनाथ से मैं भी यही प्रश्न करने वाली थी।" सखियाँ दोनों की एक स्थिति को अवलोकन कर परस्पर मन्द-मन्द मुस्कराने लगीं।

"आप सबके मुस्कुराने का कारण क्या है ? दम्पति के मुख से श्रवण-कर ···

"आप दोनों हम लोगों के ठाकुर-ठकुराइन ! अपने इन अनुचरियों द्वारा गाया हुआ 'मंद-मंद पग धरति सिया बाजति पैजनिया' गीत जो अतीत काल के रंगभूमि से सम्बन्धित श्री किशोरी जू के रंगभूमि में पधारने के दृश्य को उपस्थित करता है, सुन रहे थे, सुनते-सुनते बाह्य संज्ञा शून्य बनकर, पद के अर्थ में स्थित हो गये तदनन्तर उसी दर्शन के दर्शनाह्लाद में दोनों परिपूर्ण तद्विषयक वार्ता परस्पर करने लगे; यदा-कदा यत्किंचित हम सखियाँ भी सुन-समझकर, आप दम्पत्ति की महानता की झलक से सुखानुभूति करती रहीं। अन्त में आपकी मधुरातिमधुर वाणी के वियोग को न सहकर कीर्तन के द्वारा आपको प्रकृतिस्थ करने का अपराध, हम सब सेविकायें कर ही बैठीं, क्षमा सिन्धु अपनी अनुचरियों के अपराध को क्षमा कर देंगे, ऐसी अपने मन की प्रतीति है। चित्रा जी के मुख से सर्व रहस्य को हृदयङ्गम कर दम्पति प्रेम विभोर हो गये। चित्राजी उपचार द्वारा प्रकृतिस्थ कर सामयिक पेय एवं ताम्बूल समर्पण करती हैं, चित्रा जी तत्पश्चात नीरांजन कर शयन कुंज प्रस्थान करने की प्रार्थना करती हैं।

(दोनों शयन कुंज प्रस्थान करते हैं।)

× ×

२

"क्यों ? कोई मनीषी निर्विवाद निर्णय देने के लिये अपने को न्याय के विशुद्ध सिंहासन में आसीन कराकर, न्यायाधीश का पद ग्रहण कर सकता है ? यदि हाँ, तो प्रश्न ये हैं ?·······

परब्रह्म परमात्मा के स्वरूपगत उभय (निर्गुण-सगुण) लक्षणों में (जो परस्पर विरोधी धर्म से जान पड़ते हुए, परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान का आश्रय लेकर, उनसे अपृथक होकर रहते हैं) उपासना की सुगमता की दृष्टि से कौन सुखप्रद है ?

पुरुषोत्तम भगवान स्वयं उनकी कथा है कि भगवत कथा ही स्वयं भगवान है ?

भगवान कारण हैं कि भगवान की कथा ?

भगवान रस हैं कि भगवत कथा ?

रसिक भगवान हैं या उनका चरित्र ?

भक्त को भगवच्चरित्र छोड़कर, भगवान में लीन रहना अधिक सुख-प्रद है कि भगवान को छोड़कर भगवच्चरित्र में ?

पुरुषोत्तम भगवान का वियोग, वास्तविक योग है या योग ही वियोग है ?

ज्ञानमूर्ति कुँवर लक्ष्मीनिधि जी के प्रश्नों का उत्तर विषयक सत्य और सार्थक शब्दों का संचार, वहाँ उपस्थित श्रवणवन्तों के श्रवणों में मधुर-मधुर होने लगा।

"आपश्री से अविदित परमार्थ विषयक कोई वस्तु लोक-वेद में अन्वेषण करने पर भी अप्राप्य ही रहेगी क्योंकि आपकी समीचीन सेवा से परम प्रसन्न गुरु भगवान शंकर तथा ब्रह्मस्वरूप परम योगेश्वर आचार्य याज्ञवल्क्य जी एवं ब्रह्मविद् वरिष्ठ आपके पिताश्री ने आपको अपने आशीर्वाद से पूर्ण परमार्थ के रहस्य वेत्ता-वक्ता और उसका संभोक्ता बना दिया है। आप स्वयं ब्रह्म स्वरूप सीताग्रज के सम्मुख कोई भी सिद्धान्त तत्व, करबद्ध उपस्थित रहने में अपना भाग्य समझता है किन्तु आपश्री के मुख-विकास के लिए यथा बुद्धि-शक्ति के सहारे, उत्तर में कुछ कहने की धृष्टता हो रही है, क्षमा-सिन्धु क्षमा करेंगे।

पुरुषोत्तम भगवान युगपद परस्पर विरोधी धर्मों के आश्रय हैं, सगुण और निर्गुण उभयात्मक लक्षण ब्रह्म के स्वरूपगत निरुपाधिक हैं, दोनों में किसी की भी उपासना एक परब्रह्म परमात्मा को ही प्राप्त कराने वाली है, तथापि शास्त्र-श्रुति-संतानुमोदित एवं स्वानुभव का विषय बनी हुई, परब्रह्म की सगुणोपासना साधन दृष्टि से सुखावह और साध्य दृष्टि से अमृत बना-कर, अमृतानन्द की अनुभूतिका स्वयं सिद्ध है। भगवान व उनकी कथा दोनों एक हैं, दोनों सच्चिदानन्दात्म हैं। जो भगवत्कथा है, वही भगवान हैं, जो भगवान हैं, वहीं भगवत् कथा है। भगवान और उनकी कथा दोनों परस्पर एक दूसरे के कारण हैं अर्थात् भगवान से भगवत कथा का दर्शन होता है और भगवत्कथा से भगवान प्रकट होते हैं, यह सभी भक्तों

का व आपश्री का अनुभूत विषय है, रस स्वरूप दोनों हैं किन्तु भगवान से भगवत कथा में अधिक रस व रस-वैलक्षण्य है, यही कारण है कि भगवान स्वयं अपनी कथा के परम रसिक होने का प्रमाणीकरण कई स्थलों पर दिये हैं जैसे अपनी बड़ी-बड़ी कोरदार मनमोहनी आँखों को देखकर, आँखों को अपने को देखने से तृप्ति नहीं होती, अतः देखने वाले नेत्र को दिखने वाले नेत्र का रसिक कहकर, दृष्टि में आने वाली आँख को अधिक रसीली स्वयं की आँख सिद्ध कर देती है, स्वयं भगवान अपने को रसिक सिद्ध कर देते हैं। अपनी कथा की रसवत्ता का आस्वाद लेकर, इससे रसिक भगवान को ही कहना उचित है, कथा को नहीं, क्योंकि कथा रस-स्वरूपिणी है। भगवान को छोड़कर, भगवत-कथा श्रवण के अधिकारी परम श्रेष्ठ वर्णित होते हैं संत-समाज में, किन्तु भगवत-कथा का निरादर करके भगवान के समीपता के उत्सुक, भगवान को उतने प्रिय नहीं लगते कि जितने कथा-रस के श्रद्धालु। वास्तव में, भगवान का वियोग ही सच्चा योग है क्योंकि वियोग में प्रेमास्पद के नाम रूप, लीला और धाम में प्रेमी का योग जैसा निरन्तर बना रहता है वैसा योग-दशा में नहीं, अनुभव का विषय है। वियोग काल में आह भरा आर्ति पूर्ण अश्रुओं के प्रवाह को बहाता नाम मुख से निकलता है योग दशा में दुर्लभ है। वियोग में रूप का ध्यान, चित्त की सूक्ष्मता से साक्षात् दर्शनानन्द से ओत-प्रोत होता है, उस समय प्रेमास्पद के साथ सम्प्रयोग होता है, वह अनिर्वचनीय है। गाढ़ालिङ्गनादि क्रियायें और प्रेममय वार्तालाप निर्भीक, निःसंकोच तथा परमैकान्त में जहाँ दो के अतिरिक्त तीसरे के होने की संभावना ही नहीं, स्वतन्त्र बेरोक-टोक होता है किन्तु योग दशा में इन सबका स्थाई अभाव रहता है। भय, संकोच, असमय और एकान्त का अभाव तथा परतन्त्रता सदा मन को मोद विहीनता की बेड़ी पहनाये रहती है। इसी प्रकार वियोग दशा में अपने आराध्य की लीला का चिन्तन अनुरागोत्पादक, दोष दमनकारी और अतीत को वर्तमान में स्थित कर देने वाला सिद्ध होता है, जिसका अनुभव स्वयं 'श्री' को है। धाम में जो प्रीति वियोग काल में होती है, वह उसकी प्राप्ति में नहीं। अन्धकार में जो प्रकाश पाने की आतुरता व प्रेम वरण किये रहता है, वह प्रकाश के योग में नहीं। अस्तु उपर्युक्त विचार से वियोग दशा में सच्चा योग, अपना दर्शन-दान देता है, इसके विपरीत योग दशा में वियोग का भय हृदय को वियोगी के सिंहासन में सदा बैठाये रहता है। हाँ, उक्त स्थिति की अप्राप्य दशा, बाह्य चारिणी इन्द्रियों की प्रमुखता और भौतिक सम्बन्ध की दृढ़ता तथा आत्मज्ञान अव्यवस्थिति सच्चे योग और वियोग के दर्शन में अन्तराय उपस्थित कर दे तो

सत्य में असत्य का खोल पहनाकर, उसमें प्रतीति उत्पन्न कर देने के अतिरिक्त और क्या होगा ?''

इस प्रकार अपनी प्राण प्रियतमा का सत्य सिद्धान्त संयुक्त वाग विसर्ग श्रवण करते ही हृदयाबद्ध करके स्नेहालिप्त होकर ···

अहो ! ज्ञानियों के कुल में उत्पन्न होने वाले एक परमार्थ की पगडण्डी के पथिक को एक सच्चे साथी की संप्राप्ति, परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान के हार्दानुग्रह से हो गई, जो पथ के अंतिम प्राप्ति स्थान तक पहुँचाने के पश्चात् भी कभी साथ में न रहने का स्वप्न न देखेगा, तथा संग-संग अभिन्नतया रहकर, परमार्थ देव की अष्टयामीय सेवा में संलग्न, वह निज सेव्य के श्रीमुखकमल का विकासक सिद्ध होगा एवं अपने आराध्य की प्रसन्न मुख मुद्रा को परम भोग्य समझकर, अपने अभिन्न मित्र के साथ, उसके उपभोगानन्द की अनुभूति करेगा ।

अहह ! परमार्थ-पथ के दोनों पथिकों का गन्तव्य स्थान में, एक-दूसरे के परस्पर सहयोग से प्राप्त हो जाना ही सदा के लिये यात्रा समाप्त कर चरम फल की प्र्प्ति कर लेना है । अहो ! ऐसे साथी में सम्प्रयोग से परमार्थ-पथ सुखावह, सुधा स्वादकर सिद्ध होगा, मार्ग के पारमार्थिक दृश्य भी, परमार्थ से अभिन्न ही दृष्टिगोचर होंगे जो तत्सुख की अभिन्न अनुभूति-स्मृति-पटल पर अंकित करते रहेंगे । आनंद ! आनंद !! आनंद !!! सच्चे मित्र को अपनी हस्ताङ्गुलि थमाकर चलने में कोई थकान नहीं, मार्ग भूलने का भय नहीं, आत्माहार की वस्तुएँ साथी के साथ पर्याप्त होने से उसकी भी चिन्ता नहीं, परमात्मानुग्रह से साथी संपुष्ट, बलवान और अमृत के पेय से पला हुआ है उसके समीप चोर लुटेरे फटक नहीं सकते । बस, आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

''क्या कहा सिद्ध-प्राणों के परमेश्वर ने ? अपनी यात्रा जिसको अपने करज पकड़ाकर चलना चाहते हैं, वह आपका अभिन्न मित्र स्वयं, आप श्री के पद चिह्नों को देख देखकर, आपका अनुगमन करने वाला है। सिद्धि के स्वामी को कहाँ जाना है ? अहो ! जहाँ बड़े-बड़े अमलात्मा, वीतराग महापुरुष जाकर पुनः लौटते नहीं हैं; वहीं आपश्री स्थित हैं, अस्तु, आपकी यात्रा कबकी समाप्त हो चुकी है । गन्तव्य स्थान पहुँचकर आने-जाने की क्रिया का स्मरण कराने वाला चित्र स्मृति-पटल पर अङ्कित ही नहीं रहता क्योंकि यात्रा की पूर्णता प्राप्त कर लेने पर जब चित्त की भीत के निशान का नाम ही नहीं रहता तो स्मृति का उदय-अस्त कहाँ होगा ?

बड़ों के बड़प्पन की झलक, अपने निम्न सेवक-सेविकाओं को आदर-सम्मान देते समय ही हृदय को दिखाई पड़ती है, यथा अङ्ग अङ्गी के बिना 'शव' संज्ञा को प्राप्त हो जाता है, भोग्य वस्तु भोक्ता के बिना व्यर्थ सिद्ध होती है, दृश्य का प्रयोजन हृदय दृष्टा के बिना अकिञ्चित होता है। जब पढ़ने वाला नहीं तब पुस्तक नष्ट ही हो जाती है तदनुसार आपके सहचर साथी की सच्ची कथा है। उसमें आपकी दृष्टि से जो-जो बुद्धि-वैशद्य, ज्ञानालोक, प्रेम-प्रकाश, शमदमादि सम्पत्ति, वैराग्य-वैभव, आराध्य-कैंकर्य-दक्षता, भागवद्धर्मानुकूलता और काय-वैभव की उपयोगिता आदि गुण हैं, वे सबके सब आपश्री के ही हैं। जलाशय-स्थित सूर्य की चमक-दमक व स्थिति, गगन-गामी सूर्य की सकाशता से ही है। रात्रि के समय जैसे जलाशय की स्थिति तमसाछन्न व भयावह हो जाती है, उसी प्रकार आपश्री के बिना आपके साथी की गति विषयक वार्ता की गाथा है, अस्तु, उस निर्बल, अपने आश्रय में रहने वाले बेचारे अनुचर के सिर पर अभिमान की गठरी लादकर, अपनी महिमा के धौत वस्त्र में काला बिन्दु जैसा धब्बा लगाने का प्रयास न करें, अन्यथा आपश्री की महिमा को लोक कलंकित कहेगा क्योंकि सेवक के स्वभाव एवं गुण से स्वामी की पहचान की जाती है, अस्तु।"

इस प्रकार सखियों की स्वामिनी की नैच्यानुसंधित सत्य वार्ता, उनके पति परमेश्वर के साथ-साथ सम्पूर्ण समाज को भाव विभोर बनाने में समर्थ सिद्ध हुई तदनन्तर......

"अहोभाग्यमहोभाग्य ! अहंकार का भूत और ममता की भूतनी का दर्शन, योगेश्वर आचार्य प्रवर के प्रसाद से निमिकुल के नर-नारियों को कभी स्वप्न में भी नहीं हुआ आज तक और न भविष्य में होगा, राग-द्वेष नामक उनके छोटे बच्चे अपने माता-पिता के अभाव में भय से भरे हुये, मिथिला भूमि का नाम सुनते ही गिड़गिड़ाकर, कम्पित वदन हो जाते हैं, अतः उक्त कथन निमिकुल-वधू के सर्वथा अनुकूल है, स्वभाव की बलिहारी है, वह भाव यदि स्व (परमात्मा) के सच्चे भाव में स्थित हो गया तो वह नर को नारायण और नारी को नारायणी बनाकर ही स्वस्थ होता है अर्थात् परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान में स्थित कर देता है। कान्ता के कान्ति का दर्शन पद-पद में सूचित करता है कि उनके स्व-भाव ने उनको स्व-भाव में सर्वभावेन संस्थित कर दिया है, अस्तु, उनके कान्त भी वहीं पाये जायेंगे जहाँ उनकी कान्ता हैं। आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!! दोनों की उपयोगिता सिद्ध हो गई। स्व (भगवत) कैंकर्य की प्राप्ति में। हम सब धन्यातिधन्य हो गये क्यों-

कि हमारे श्री सद्‌गुरुदेव योगिवर्य श्री याज्ञवल्क्य जी का कथन है कि स्व' नाम धन्य पूर्णतम परब्रह्म परमात्मा ही साक्षात् सगुण साकार राम रूप में आकर आपको सखे ! कहकर सुखी होता है और उस परब्रह्म परमेश्वर की स्वरूपाशक्ति, सीता रूप में प्रकट होकर, आपके अङ्क में बैठकर सुखानुभूति करती हैं अतः आनन्द ! आनन्द !! कि पुनः श्री रसिकराय रघुनन्दन के सरहज एवं श्री रस स्वरूपा श्री सिया जू के भाभी के आनन्द की चर्चा !''

श्री सिद्धि-वल्लभ-वर्णित वार्ता के श्रवणगोचर होते ही आनन्द-आनन्द-आनन्द की स्थिति में स्थित, अनिर्वचनीय आनन्द का पात्र सब सखि-समाज बन गया।

''वास्तव में ब्रह्म-सम्बन्ध की ही एकमात्र ऐसी महिमा है, जो भव-सम्बन्ध के बीज का विनाश करने में सर्वथा समर्थ है किन्तु वह ब्रह्म-सम्बन्ध भागवत-सम्बन्ध के साथ में रहकर अधिक संपुष्ट और शक्तिशाली सिद्ध होता है, जिसे जीव व ईश्वर दो में कोई भी कामना करे कि हम स्व-स्वामि के सहज सम्बन्ध से मुक्त हो जायँ और स्वतन्त्र होकर, पारतन्त्र्य के बन्धन का कभी दर्शन न करें तो सर्व समर्थ परमेश्वर भी इस कार्य को करने में जब असमर्थ हो जाता है तब अल्प शक्तिक जीव की शक्ति कहाँ तक सक्षम हो सकेगी ? अस्तु श्रीधर कुमारी की पितृ-गृह-वर्धित भागवत सम्बन्ध की कामना ने मिथिलेश कुमार की अर्द्धाङ्गिनी बनाकर भगवत्-सम्बन्ध से संयुक्त कर दिया है, बिना साधन के । अहो ! भागवत-सम्बन्ध के कल्पवृक्ष की छाया तले बैठे-बैठे अपने आप सगुण साकार परब्रह्म का दर्शन-सम्बन्ध-सेवा-स्पर्श-वार्तालाप उसके स्वरूपा शक्ति के सहित संप्राप्त हो गया है उसको, अतएव यह भगवत-भागवत-सम्बन्ध प्राप्ति रूप महाफल का रसास्वाद लेने वाली भाग्याधिका नारी का सौभाग्य-सूर्य स्व और स्व के भाव को परम प्रकाशित कर रहा है, भविष्य में करता रहेगा, ऐसी उसकी अटल प्रतीति है, जिसने बिना बीज वपन के खेत में भरपूर लहलहाती फसल उत्पन्न की है, वही उसका रक्षक भी है । अब अधिकारी कृत्य इतना ही है कि वह अपने आश्रय प्रदाता में अनन्य तथा तत्सुख से सुखी रहकर, उनकी सेवा को परम पुरुषार्थ समझे, बस ! आनन्द ! आनन्द !! कहकर लक्ष्मीनिधि-वल्लभ के भाव-देश-स्थित की स्थिति से समाज प्रभावित हो गया ।

''आप अपने कान्त की कामना पूर्ति के लिये अपनी मधुर वाणी का विनियोग करें । वे कथाहारी हृदय-सम्राट आपके श्रीमुख से हृदय-बिहारी-बिहारिणी जू की कथा का आहार करने के लिये कब से क्षुधातुर हो रहे

हैं। अन्न की सर्वभावेन सुविधा प्राप्त होने पर भी सबसे पाक-प्रक्रिया का नैपुण्य नहीं बन पाता, रामकथा के अन्न की रसोई बनाने में आप सिद्ध हस्त हैं, यह हम सब सखियों का अनुभव है। आपश्री के हृदयेश्वर को तो आपश्री की बनाई व परोसी हुई रसोई, सुरपुर के अमृत के प्रति विरति उत्पन्न कर उससे विलक्षण अमृतानन्द का अनुभव कराने वाली है, अस्तु······आपश्री शीघ्र अपने विकसित मुख-कमल की पराग-पूरित सुगन्ध से अपनी अङ्गभूता अलियों व अनुचरियों को सुगन्धित करके उक्त जेवनार बनाने की आवश्यक सामग्रियों को एकत्र कर, रसोई घर पहुँचाने का आदेश करें और स्वयं प्रसन्नमना विविध व्यञ्जनों का थाल सजाकर, अपने प्राणनाथ को चौके में पधारकर, पाने के लिये सादर, सनम्र आमन्त्रित करें अन्यथा क्षुधातुर आपके प्राणधन के प्राण छटपटाने लगें तो आपश्री को उस दोष का भागी बनना पड़ेगा।" श्री चित्रा जी द्वारा चित्रा के स्वामिनी के सचेष्ट होने पर, सखियों के मुख से की हुई जय-जयकार की ध्वनि ने कक्ष में गूँजकर आनन्द की परिवृद्धि उपस्थित कर दी तदनन्तर समाज की प्रकृतिस्थ अवस्था आ जाने पर, श्री श्रीधर कुमारी के कर्णों में मधुरातिमधुर वाणी का अमृत घोल-सा पड़ता प्रतीत होने लगा जिससे अन्तःकरण अमृतानन्द की अनुभूति करने में संलग्न हो गया।

"अहह ! परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान के हार्दानुग्रह का अपार पयोधि, अपने को प्रत्येक ओर से आवृत्त किये हुये है, यह अपनी अनुभूति का प्रत्यक्ष विषय है, तभी तो पग-पग में परमानन्द के हिंडोरे में अपने को झूलता हुआ पाता हूँ। राम-कथा के रसिकों को, कोई राम-रस के सिन्धु में गोता लगाने वाला एवं राम-कथा को श्रवण कराने वाला रसिक मिल गया तो फिर क्या कहना है, दो समुद्रों के परस्पर मिलने जैसा अन्तःकरण में आनन्दजनित कोलाहल होने लगता है, अस्तु, मैं तो धन्यातिधन्य हो गया, क्योंकि राम-कथा-रस को विविध प्रक्रिया से पान करने के लिये, परमात्मा ने तद्विषय की विशेषज्ञ मूर्ति को, हमें प्रसाद रूप में प्रदान किया है और वह भी अर्धाङ्गिनी के रूप में। अहो ! राम-कथा का रस उसकी दिनचर्या में एवं प्रेम का प्रकाश उसके मुखादि अवयवों में ही नहीं अपितु रोम-रोम से फूट-फूट कर निकलता हुआ, सबके प्रतीति का विषय बनता है। उस मूर्ति को हृदय में ले-लेकर ही, मैं भी उसके स्वर में अपने स्वर को मिला हुआ अभेद पाता हूँ, इतना ही नहीं और भी, वह क्या तो मैं श्री रसिक शिरोमणि राम रघुनन्दन का अभिन्न सखा बन गया हूँ और स्वयं रस संज्ञा उनसे प्राप्त कर

सख्यरस का पेय पिलाते हुये उन्हें अतृप्त दृष्टि से अपनी ओर देखने के लिये बाध्य-सा देखकर, उनकी कृपानुभूति से आनन्द-सिन्धु में अस्त-सा हो जाता हूँ। अपनी अनुजा के स्नेह की असीमता पर दृष्टिपात कर, अपने को सर्वस्व पाया हुआ जानकर अपने भाग्य-वैभव की इयत्ता का अन्वेषण नहीं कर पाता। यह सब राम-कथा की रसिकनी उस मूर्ति के वैभव का चमत्कार है जो मेरे राम-प्रेम के पौधे की परिवृद्धि करने के लिये, मुझे सहायिका-शाखा के रूप में, परब्रह्म परमेश्वर से प्रसाद रूप में प्राप्त हुई है।''

कुमार के ऐसा कहते-कहते समाधि शयन की स्थिति हो जाने से प्रेम-चिन्हों से चिन्हित सारा समाज विश्राम करने के लिये आत्म-कक्ष में प्रस्थान कर गया तत्पश्चात जागने पर, सुधा-सुपूरित शब्दश्रेणियाँ श्रवण-गोचर होने लगीं।

अहो ! जो सहज मीठा ईक्षु-रस है, उसमें ऊपर से मीठा डालने की आवश्यकता नहीं होती, जो सहज प्रकाश का पुन्ज है, उसे दीपक दिखाने की क्रिया का सम्पादन करने वाला अज्ञानी ही समझा जायगा समुद्र को एक अँजुली जल देकर उसमें बाढ़ नहीं लायी जा सकती; इसी प्रकार जिसके मानस-मन्दिर में श्री सीताराम जी नित्य विहार करते हैं एवं अपनी नित नव-नवायमान लीला के रस से उसके हृदय-भूमि को सिक्त करके नये-नये भावों की उपज से सदा लहलहाये रहते हैं, उसको राम-कथा श्रवण कराने की चेष्टा करने वाला, अन्न की महान राशि में एक दाना डालकर, उसमें परिवृद्धि लाने की साधना करने वाले के समान क्या न होगा ? तथापि जैसे श्रद्धालु सूर्य-भक्त, सूर्य को दीपक दिखाकर अपने इष्ट की प्रसन्नता प्राप्त कर लेते हैं, उसी प्रकार अपनी अनन्य सेविका से सम्पादित श्रीराम जी के भावोदित चरित्रों को श्रवण कराने की सेवा से, उसके सर्वस्व स्वामी अपनी परम प्रसन्नता भरी मुख-मुद्रा से अवलोकन करके, उसे परमानन्द की अनुभूति कराये बिना न रहेंगे, अस्तु, भोग्य वस्तु की उपभोग प्रक्रिया भोक्ता की इच्छा पर निर्भर करती है इसलिये भोग्य वस्तु को भोक्ता की इच्छानुसार ही तैयार रहना चाहिये तभी शेषत्व धर्म की रक्षा एवं अनन्यता सिद्ध होगी। सुनैनानन्दवर्धन श्री मिथिलेशकुमार श्रीसीताग्रज, अपनी अनन्या अर्द्धांगिनी को अपनी कहकर, उसकी सेवा से सदा प्रसन्नवदन बने रहें, इससे अधिक उसका सौभाग्य और कोई है ? कभी विचार नहीं करती वह, अन्य कुछ हो भी तो उसे कभी नहीं चाहिये। अपने नँनद-ननदोई के

भाव-देश-स्थित चरित्रों का यत्किंचित ज्ञान उनकी कृपा से जिस दासी को है, वह एकान्त में आपश्री से समय-समय पर निवेदन करने की चेष्टा अवश्य करेगी।"

× × ×

३

"अहो! मिथिला आने के प्रथम मैं अपने किसी अविज्ञात सखा को स्वप्न-प्रदेश में केवल देखा ही नहीं, अपितु उस सुहृद का सुन्दर अमृतालिङ्गन प्राप्तकर अपने को भूल गया था, आत्मा-रमण के सुख का संस्पर्श, मित्र के अङ्गावलोकन मात्र के आनन्द से अपनी तुलना करने में असमर्थ हो गया। अहह! कैसा सुन्दर-सुडौल शरीर जो मदन के मद को मर्दन करने वाला, सारतम सौंदर्य-सुधा से लबालब भरा हुआ, समुद्र-सा प्रतीत होता था, सौकुमार्य एवं माधुर्य के दो सिन्धु उससे मिलकर अन्तःकरण की तट-भूमि के विनाश के लिये प्रलय का समय उपस्थित कर रहे थे। अहो! कैसी मनमोहिनी मधुर मुसकान एवं दृष्ट चित्तापहारी चितवनि से युक्त मुख मण्डल शत-शशि विजेता सिद्ध हो रहा था, कहते-कहते अतीत की स्वप्न-स्थिति ने बर्तमान में आकर, स्वप्न-द्रष्टा को स्वप्न के आनन्द की अनुभूति से स्थित कर बाह्य ज्ञान से शून्य कर दिया पुनः स्वप्न के अदृश्य काल ने (जाग्रत अवस्था ने) सखा की वियोग-दशा में स्थित कर प्रलापादि करने को बाध्य कर दिया। "सखे! मुझे छोड़कर तुम कहाँ चले गये? अहो! पुनः आकर अपने मुख-कमल का पराग इस अतृप्त भ्रमरे को पिलाकर चेतना प्रदान कर दो। अरे! अपना नाम-ग्राम भी मुझे नहीं बताये, तुम्हारे रहने का ठिकाना मुझे मालूम होता तो मैं स्वयं आकर तुमसे कब का मिल लिया होता।" इत्यादि वार्ताओं का प्रलाप, सात्विक-चिह्नों से चिह्नित होकर करते देख स्वप्न-दृष्टा के मुख से, स्वप्न-कथा की श्रोत्री सेविका ने अपने वक्ता को उपचार द्वारा प्रकृतिस्थ कर आगे की कथा श्रवण कराने की प्रार्थना की, तदनन्तर........।

अरे! अरे! यह क्या हो गया? कथा सुनाना भूलकर, स्वप्न को सत्य के सिंहासन में बैठाकर उसी में दृष्टा भी बैठ गया? आश्चर्य! अहो यह सब अपने आत्म-सखा के दर्शन का दिव्य जादू है। स्वप्न दर्शन के पश्चात् दिन को न चैन और न रात्रि को निद्रा। एकान्त पाकर हा सखे! हा मित्र! कहकर अश्रु बहा लेता, अपने आप प्रेम की कुछ वार्तायें निकलकर शान्ति

का संचार कर देती। राग-रंग मन को रमाने में असमर्थ रहने लगा। मैं अपने मनोभावों को औरों से छिपाने में सदा सजग रहता था किन्तु शरीर में कुछ कृशता के वरण कर लेने से, मेरे सुख को सुख मानने वाले, माता-पिता, बन्धु-सुहृद, दासी-दास आदि सभी परिजन-पुरजन के मन में चिन्ता का भूत लग गया, पूछने पर सबको यही उत्तर मिलता था कि आत्म-चिन्तन के कारण कुछ भले ही शरीर में आप लोगों को अन्तर प्रतीत होता हो परन्तु मैं स्वस्थ हूँ। लोग प्रेमवश मंगलानुशासन, रक्षा-मन्त्र, पूजा-पाठ, झाड़-फूँक, दान-मान आदि अनेक अनुष्ठानों द्वारा मुझे परम सुखी कर सुखी होना चाहते थे।

अन्ततः सत्य सबके समक्ष समय पर उपस्थित हो ही जाता है। बरछी के घाव गोमय लगाने से नहीं छिपते। एक दिन सरयू-पुलिन पर अमर तुल्य अनुजों एवं सुहृद सखाओं के साथ कन्दुक-क्रीड़ा कर रहा था, देखा कि कुछ यात्री सरयू को नौका के द्वारा पार कर मेरी ओर आ रहे हैं, दौड़कर मैं उन लोगों के पास पहुँचा और प्रश्न करने लगा ....."भाई! आप लोग कहाँ से आ रहे हैं? कहाँ जाना है? आप लोगों का परिचय क्या है? आप लोगों को यात्रोपयोगी सब सुख-सुविधायें प्राप्त हैं या नहीं? अभाव ग्रस्त प्राणियों को सर्वभावेन सुख प्रदान करने के लिये, हमारे पिता-श्री हम सब भाइयों को सचेष्ट रखते हैं। कहिये, हम आपकी कौन-सी सेवा कर अपने को भाग्यवान समझें?' प्रथम तो वे लोग हमको देख तथा हमारे वाक्य-वैभव को श्रवण का विषय बनाकर, आनन्द में अस्त से हो गये पुनः धैर्य धारणकर उन पथिकों ने कहा कि, 'हम मिथिला से आ रहे व्यापारी हैं, हमें कोई अभाव नहीं है, जो अभाव था, वह आपके दर्शन मात्र से पूर्ण हो गया।" मिथिला का नाम सुनते ही मैं अपने गूढ़तम भावों को छिपाने में असमर्थ हो गया, वाणी में गद्‌गद्‌ता आ गई, रोमांच चमत्कृत हो उठे, अश्रु-धारा अन्य के आंखों का विषय बनी, शरीर कम्प से पूर्ण हो गया। लड़खड़ाती हुई वाणी से उनसे पूछा मैंने "मिथिला के समाचार सब श्रवण सुखद हैं न? वहाँ के महाराजश्री व उनके परिवार के विषय में आपको यथार्थ जानकारी है क्या?" सुनकर एक श्रेष्ठ ने कहा, "कुमार! मिथिला के आनन्द के विषय में क्या कहा जाय, वहाँ का सुख-समाचार अप्रतिम और अनिर्वचनीय है।" तत्पश्चात श्री मन्महाराज की गुणगणावली सुनाने के सन्दर्भ में कुमार लक्ष्मीनिधि का नाम सुनते ही, आत्मविभोर हुआ-सा उनके विषय की बहुत सी बातें पूछ-पूछकर अपने श्रवणों का विषय बनाया।

मनःस्थिति को सँभालने में प्रयत्नशील मुझको, मेरे बन्धुओं व सुहृदों ने स्वस्थ न समझकर परस्पर कुछ चर्चा करना प्रारम्भ किया फलतः मुझे किसी अज्ञात प्राणी-पदार्थ के विषय में चिंतित समझने लगे वे। इस प्रकार मेरे दिन अपने सुहृद के अभाव में बडे कठिनाई से कटने लगे।

एक दिन निजी भवन की भव्य वाटिका में एकान्त में बैठकर, अपने अभिन्न आत्म-सखा का चिन्तन करते-करते विरह की वेदना से पीड़ित हो गया। "हाय सखे! कब तुम्हारे दर्शन लाभ को प्राप्तकर सुख की नींद सो सकूँगा? हा! अब आपके वियोग में कोई भी वस्तु, मेरे मन को रमाने वाली नहीं रह गई।" इत्यादि प्रलाप की बातें करते-करते अपने को सँभाल न सका। सर्वाङ्गीण सात्विक चिह्नों से चिह्नित चेतना हीन सा, हा सखे! कहकर श्वासें खींच रहा था, इतने में ही प्रिय लक्ष्मण मुझे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वहाँ आ पहुँचे। मेरी दयनीय दशा देखकर वे लौट पड़े और श्रीमान् पिताजी को चुपके से, श्री महर्षि वशिष्ठ जी और देवर्षि नारद जी के साथ लिवा लाये। शिष्य की दशा देखकर, वे त्रिकालज्ञ ऋषि प्रवर सब समझ गये। आचार्य ने मन्त्र पढ़ने के ब्याज से, अपनी संकल्प-शक्ति द्वारा निज सेवक को स्वस्थ कर दिया तत्पश्चात् श्रीपिता जी को आश्वस्त करते हुए कहा कि, 'आप चिन्ता नाम मात्र न करें, आपके ये पुत्र अपने उस आत्म-सखा के स्मरण से कभी-कभी ऐसी स्थिति का आलिंगन कर लेते हैं, जो इनके स्मरण से सदा विरह-वह्नि में झुलसता हुआ, इनके मिलने के लोभ से जी रहा है।" पुनः अपने पितृदेव और आचार्य देव के दुलार से स्वस्थ होकर अपने वासस्थान चला आया। वहाँ एकान्त में श्री नारद जी ने आकर, मुझसे मिथिलेश कुमार के अनुराग का वर्णन किया और थोडे समय में ही परस्पर मिलने का सुयोग बताकर वे ब्रह्म-भवन चले गये। यह भी समय की प्रतीक्षा में कालक्षेप करने लगा।

समय आने पर देखते ही मैंने अपने हृदय की उस कौस्तुभ-मणि को पहचान लिया, जिसे इसने कभी स्वप्न में प्राप्त किया था, जिसके वियोग में गुरुजनों के सामने भी, अपने हृदय की व्यथा की कथा को छिपाने में समर्थ सिद्ध न हुआ। अब तो आनन्द! महानन्द!! अपने अभिन्न सुहृद सखा के साथ मज्जन, अशन और शयन करके, उसी प्रकार आनन्द की अनुभूति करता हूँ जैसे कोई निर्धन पुरुष स्वप्न में पाई हुई, पारसमणि को जाग्रत अवस्था में प्राप्तकर, कुबेर के वैभव को विलज्जित करता हुआ सदा सुख की नींद का अनुभव करे।"

इस प्रकार श्याम सुन्दर सीताकान्त राम रघुनन्दन ने मुझसे आप विषयक पूर्वराग का वर्णन, अपने श्री मुख से किया था। धन्य हैं मेरे प्राण-नाथ की महिम्नता को; जिसने योगियों के रमने के एकमात्र स्थान सच्चिदा-नन्द स्वरूप दाशरथि राम को रिझाकर, अपना अनुरागी बना लिया है पुनः आपकी प्रेमगाथा के पश्चात् प्रेम रस रञ्जित रघुनन्दन को, उनकी सरहज सिद्धि ने राम-राग जनित आपश्री की विरह-व्यथा की कथा को श्रवण कराया था। सुनते ही हमारे नेत्रोत्सव स्वरूप ननदोई, आपकी प्रीति को अप्रतिम कहते हुए, आपके प्रेम में निमग्न हो गये। उपचार से दासी ने उन्हें प्रकृतिस्थ किया।

इस प्रकार मिथिलेश कुमार अपनी प्रियतमा के श्री मुख से स्व-प्रति घटित, श्रीराम-कथा श्रवण कर, अपने को सँभाल न सके। कुछ समय में प्रकृतिस्थ होकर, पुनः अपने भाम की भव्य भावमई एकान्तिक कथा श्रवण कराने के लिये प्रेरणा प्रदान करने लगे श्री श्रीधर कुँवारी सिद्धि कुँअरि जी को।

× × ×

४

"अहो! पूर्वराग की स्मृत के परदे की डोरी खींचकर आप भी, अपने ननदोई के पूर्व-प्रेम का भंडाफोर करने में उतर चुकी हैं क्या? मेरी लज्जा मेरे पास ही रहे, आप उसे लेने का प्रयास क्यों कर रही है?"

"इसलिये कि जैसे अपनी ननँद के हृदय और उनकी भाभी के हृदय में अभेद है, उसी प्रकार अपने ननदोई का हृदय भी कपट का केन्द्र न बन-कर, अपनी सरहज के हृदय से, हृदय-बिहारी के अनुरूप अन्तर की यवनिका से हटा ले। क्या यह ठीक नहीं है?"

"आपके प्राणातिथि को संकोच लग रहा है फिर कभी समय पाकर सुन लेंगी तो आपका क्या बिगड़ जायेगा?"

"जब लाल साहब सुनाना ही चाहते हैं तो अतीत-राग के स्वर को वर्तमान में आलाप के द्वारा झंकृत कर, अपनी सरहज को सुना देने में कौन-सी लज्जा उनको आकर वरण कर लेगी? यहाँ कोई दूसरा तो है नहीं। अरे! एक ताड़का नाम की अबला को एक बाण से मार गिराये. जगत जानता है, तब लज्जा नहीं लगी? अब पूर्व राग की कथा न सुनाने के लिये

लज्जा का बहाना करने लगे। चलिये, सुनाइये न। कब से हमारे श्रवण आतुरता का अनुभव कर रहे हैं, कथा सुनाने की दक्षिणा भी अप्राप्त न रहेगी, ऊपर से हम भी कथाहारी को कुछ कथा सुनायेंगी, जो उन्हें अच्छी ही नहीं, बहुत अच्छी लगेगी।''

''आपकी बात टाली भी नहीं जा सकती, अतः श्रवण करें। अनेक मुखों से अपने प्रति आपकी ननँदश्री का किया हुआ पूर्व राग श्रवण करके अपना मन भी अपने प्रति सम्बन्धी का हो गया था। इसमें सन्देह नहीं कि अपने मन ने प्रथम कुभाव से किसी नारी का स्मरण करना जाना ही नहीं था और न अब; एक के अतिरिक्त दूसरी को स्मरण करना अमन का काम नहीं है।

उस समय विधि के विधान से खोई हुई अपनी निधि के समान अपने में अनुरक्त एवं अनन्या जनक-दुलारी का अनन्य होकर, राम का मन भी सीता की समीपता से अन्यत्र जाने का अवकाश ही नहीं पाता था; अतः एक दिन अपने भवन के शयन कक्ष में पड़े हुये सोने के पलंग में पड़ गया, अनुचर अनुचरियाँ भी सेवा से अवकाश पाकर, अपने-अपने शयनागार में चलीं गईं। बाहर कुछ पहरेदार पहरा दे रहे थे। शयन करने का प्रयत्न करने पर भी निद्रा देवी ने मुझे वरण नहीं किया अतः उठकर बैठ गया और ध्यानस्थ चिदाकाश में उदित मिथिला के दर्शनीय दृश्यों का दर्शन करने लगा। रंग-भूमि की भव्यता चमत्कृत करने वाली बड़ी दिव्य थी। धनुष देखने की लालसा लेकर ज्यों ही उसके पास गया त्यों ही वह मुझे आकर्षित-सा करने लगा अपनी ओर। मैंने पूजा दृष्टि से प्रणाम कर अपने एक हाथ से उसका स्पर्श किया बस ···छूते ही दो खण्डों में सबके नेत्र का विषय बना, अवनी और आकाश पंच शब्द से शब्दायमान हो गया, पुष्प-माल, इत्र-अरगजा, रंग-गुलाल की वर्षा होने लगी आपके ननदोई के ऊपर। सब समाज के हृदय का स्नेह भाजन बन गया मैं। सब मुझे अपने प्यार भरे नेत्रों के द्वार से उरालय में प्रवेश कराकर, सदा के लिये बन्दी बनाने में प्रयत्नशील थे। श्रीमन्मिथिलेश जी महाराज एवं कुमार लक्ष्मीनिधि जी आप सहित माँ सुनैना जी की प्रीति कितनी थी, उसकी इयत्ता राम को न प्राप्त हुई।

आपश्री की ननँद सुनयनानन्दवर्धिनी द्वारा विजय-माल के पहनाने का अवसर त्रिभुवन को परमानन्द के सिन्धु में निमग्न कर रहा था, पुनः अयोध्या से बारात के साथ श्रीपिता जी का आना पुनः विवाह-प्रक्रिया का सर्वाङ्गीण दृश्य तथा आपके कोहबर भवन में चार दिन रहना, आपकी

प्रेमपूर्ण अष्टयामीय सेवा, राम को अपने आधीन बना रही थी; इतने में ही बन्दीजनों की बिरदावली, वेदध्वनि तथा मैया का मुझे जगाने के लिये, अपनी दासियों सहित आने के साथ, उनके आभूषणों के शब्दों ने मुझे अन्तर्जगत से लाकर बाह्य जगत में स्थित कर दिया और मैं अपनी स्थिति को छिपाने के लिये चादर ढककर सो-सा गया। जागते ही वह आनन्द का सरोवर सूख-सा गया, स्वप्न की भाँति मिथ्या की प्रतीति कराने लगा किन्तु हृदय से आवाज आती थी कि यह दृश्य सर्वथा सत्य होकर रहेगा।

"कहिये, मुझे निर्लज्ज बनाकर अब तो संतोष हो गया आपको ! मैंने बड़े स्नेह से उनकी बलैया ली, उनके स्वभाव पर रीझकर उनकी आरती उतारी, दृष्टि-दोष न लगने का उपाय किया, मंगलानुशासन किया, इस प्रकार श्री सीताकान्त जू ने पूर्वराग के सन्दर्भ में चिदाकाश उदित उपर्युक्त दृश्य के दर्शन की कथा संक्षेप से, आपकी दासी को सुनाई थी। श्री युवराज कुमार लक्ष्मीनिधि जी, रामकथा की माधुरी का पेय पीकर, माधुर्य की सरिता में बह गये पुनः श्रीसिद्धिकुँअरि जी के सहारे धैर्य की नाव में बैठकर सचेष्ट हुये तत्पश्चात् पुनः राम की रसीली गाथा सुनने के लोभ को संवरण न करके, वक्ता की ओर अतृप्त नेत्रों से देखने लगे।

× × ×

५

एक दिन हम चारों भाई अपने सुहृद, सखाओं और सेवकों के साथ प्रमोद वन में विधि क्रीड़ाओं में मग्न परस्पर आनन्द का आदान-प्रदान कर रहे थे। वसन्त का सुहावना समय, वसन्त श्री से सर्वविधि सम्पन्न सबके चित्त को आकर्षित कर रहा था। सुन्दर सुकोमल नवीन हरे-हरे पत्तों से आच्छादित विविध वृक्ष, अपने-अपने पुष्पों की भीनी-भीनी सुगन्ध से दसों दिशाओं को सौगन्धिक-सम्पत्ति से सम्पन्न कर रहे थे ! त्रिविध वायु बह-बहकर सुन्दर सुरभित पुष्पों का पराग पीने के लिये मधुलोलुप-मधुपों को आमन्त्रित कर रहा था। भ्रमरों की काली-काली पंक्तियाँ वृक्ष-पुष्पों में मड़रा-मड़राकर एवं मधु पी-पीकर मत्त हो रहीं थीं और गुन-गुन का गुञ्जार कर-करके वृक्ष सहित सुरभित सुमनों को बधाई दे रहीं थीं। सरयू की कल-कल धवल धारा-ध्वनि एवं तटनी की तटवर्ती हरित भूमि, जो वृक्षावलियों से युक्त थी, मुनि - मन - मोहिनी साकेत - सुख - दोहिनी थी। वहाँ समय-समय पर सुर-किन्नर कन्यकायें विहार करके नन्दनादि वन से

विलक्षण प्रमोद वन में आनन्द का अनुभव किया करती थीं। विविध प्रकार के पक्षियों का कलरव एवं मयूर समूहों का नृत्य, प्रमोद वन के वैभव की महिमा का स्मरण कराकर सबके चित्त को राम नामक वहाँ के राजकुमार की ओर ले जाने में सहायक सिद्ध हो रहा था। उक्त प्रकार प्रमोद विपिन के विहार में स्थित प्रमोद-वन-बिहारी के मन में आया कि अधिभौतिक लीला, आज न करके अधिदैविक केलि के द्वारा हम लोग आनन्द की अनुभूति करें। क्रीड़ा नायक की इच्छा से सेवकों ने, वहाँ सरयू तट से कुछ दूर पुष्पित वृक्ष समूहों के मध्य चार सुन्दर चबूतरों का निर्माण कर दिया और उनमें सुन्दर बिछौने, पुष्पों को बिखेर कर डाल दिये गये। चारुतम चबूतरे नव्य-भव्य और मनमोहक थे। चारों पीठ क्रमशः कुछ नीचे एक-दूसरे से बने थे किन्तु विस्तार क्रमशः एक से दूसरे में अधिक था। उनके नाम भी क्रमशः परमात्मा, प्राज्ञ, तेजस और विश्व रखे गये। उन चबूतरों पर चार स्त्रियों के प्रतीक रखे गये, जिनका क्रमशः नाम था, तुरीया, सुषुप्ति, स्वप्न, और जाग्रत। इनकी मुद्रायें भी ज्ञानमई, गाठ निद्रा में निमग्न, एक साथ सोती-जागती-सी और जागती हुई, कुछ कार्य करती हुई-सी। केलि-साधन सामग्रियों को देख देखकर सभी के मन समुत्सुक थे, इस नवीन क्रीड़ा के दर्शन के लिये। धरा में अपना समाज था ही, मृगों के झुण्ड भी चारों तरफ से घेर लिये क्रीड़ा-स्थल को, पक्षियों के समूह वृक्षों में बैठ गये और उनकी हरीतिमा को लुप्त कर अपने-शरीर-सम्पत्ति का दर्शन लोगों को कराने में उद्यत हो जान पड़ने लगे। आकाश भी विमानों की पंक्तियों एवं उनके शब्द से निरवकाश हो गया। क्रीड़ा के अभिनेता ने कहा कि हम सब चारों भाई, जिसकी जहाँ इच्छा हो, इन चबूतरों में बैठ जाँय। निर्देश पाकर प्रथम लक्ष्मण कुमार 'विश्व' नामक चतुर्थ चबूतरे पर बैठकर कुछ करने से लगे। तृतीय 'तेजस' नामक चबूतरे पर शत्रुघ्न कुमार अर्ध निद्रा की स्थिति में स्थित हो गये स्वेच्छा से, द्वितीय 'प्राज्ञ' नामक चबूतरे पर भरत कुमार गाढ़ निद्रा की स्थिति में स्वरूपानुसार आसीन हो गये; तत्पश्चात् बचे हुये प्रथम ऊँचे चबूतरे में आपका राम ज्ञानाकार ज्ञान मुद्रा में स्थित होकर बैठ गया। बैठने पर चारों भाइयों को यह ज्ञान भूल गया कि हम सब अयोध्या के चक्रवर्ती कुमार हैं और प्रमोद बन में क्रीड़ा कर रहे हैं। हम और हमारा चबूतरा, प्रकाश के अतिरिक्त उस समय कुछ न था, उस प्रकाश पुञ्ज से एक ज्योति अमल और अनिर्वचनीय निकलकर, भरत और उनके चबूतरे को भी प्रकाश स्वरूप बना रही किन्तु कुछ तेज कणसमूह सोते हुयें भरत के प्रकाशित मुख में प्रवेश कर रहे थे। दूसरे चबूतरे से एक तेज-

पुञ्ज निकलकर, तीसरे चबूतरे को शत्रुघ्न समेत 'तेजस' स्वरूप बना रहा था; उस समय शत्रुघ्न जगत्सृष्टि का स्वप्न देख रहे थे पुनः तीसरे चबूतरे से एक तेज की महाराशि निकलकर चतुर्थ चबूतरे को लक्ष्मण समेत प्रकाश स्वरूप बना रही थी, उस वक्त लक्ष्मण के ज्ञान में जगत की अपने स्वरूप से भिन्न प्रतीति न थी। सीता, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति और उर्मिला उपर्युक्त अवस्थाओं के साथ, अपने-अपने स्वामियों में अन्तर्भुक थीं।

इस प्रकार दिव्य दृश्य के उपस्थित होने पर, साथ में आये हुये साथी, चित्र लिखे-से स्वयं की स्मृति से शून्य थे। ब्रह्मादि देवगण जय जयकर करके पुष्प वृष्टि कर रहे थे। सभी सिद्ध सुर-मुनि-समुदाय स्तुति कर रहा था······ 'आप चारों भ्राता परब्रह्म स्वरूप चतुष्पाद हो अर्थात् वेद-वर्णित 'ब्रह्म' के परमात्मा (सबके कारण स्वरूप) प्राज्ञ (कारणार्णवशायी) तेजस (हिरण्यगर्भ) और विश्व (विराट विश्वरूप) चार पाद हैं, चार होकर एक ही हैं और जगतकार्य के लिये एक ही आप, अपने को चार पादों में स्थित करते हैं। आपश्री की महिमा अनन्त है, जगत मर्यादा स्थापित करने के लिये चार पाद स्वरूप राम, भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण के रूप में प्रकट होकर, सबके नेत्रों का विषय बन रहें हैं, आपकी जय हो, जय हो। सभी सुर-मुनि-नाग-कन्यायें पुष्प-माला-इत्र, रोरी-अक्षत-चन्दन-लाजा आदि मांगलिक द्रव्यों की वर्षा करके मंगलानुशासन कर रहीं थीं, यह सब ज्ञान केवल अपने को पूर्ण रूपेण था क्योंकि आप का राम, ज्ञानयोग में स्थित चिदाकाश में उदित, उक्त दृश्यों का दर्शन कर रहा था, शेष तीनों भ्राता भूले हुये से थे क्योंकि भरत सुषुप्ति में, शत्रुघ्न स्वप्न में और लक्ष्मण जागृत कार्य (बाह्य विषय) में स्थित थे, खेल इन्द्रियातीत था। अपने-अपने पाठ के अनुसार क्रीड़ा कला का प्रदर्शन कराके स्वप्न-दशा से जग जाने के समान केलि से विरत होकर, अपने-अपने चबूतरे से चारों भाई उत्तर आये और सब सखाओं सुहृदों और सेवकों से मिले। सभी सुहृदों ने कहा, "भैया राम! चबूतरे में स्थित होने पर आप चारों भाई एक-दूसरे के प्रकाश से जुड़े हुये प्रकाश स्वरूप से प्रतीत हो रहे थे, बड़ा आनन्द आ रहा था। देखिये, आकाश से ये बहुत-सी पुष्प-मालायें आदि मांगलिक वस्तुयें गिरी हुई, अब तक पड़ी हैं, हम लोगों ने जय-जयकार की ध्वनि भी सुनीं, न जाने कौन कर रहा था। भैया! उस समय हम लोगों को अपनी सुधि न थी, आनन्द! आनन्द! केवल आनन्द की अनुभूति हो रही थी। आज की क्रीड़ा बड़ी विचित्र और वैभवशालिनी चमत्कार पूर्ण थी। भइया! लगता है कि

अभूतपूर्व कोई जादू का खेल था। आपश्री इसको किस समय व किससे सीखे हैं ?' आपके ननदोई ने कहा, "मित्रों। इसमें कुछ न था, न जाने किसी अज्ञात शक्ति से प्रेरित होकर ही, क्रीड़ा का प्रारंभ हम लोगों ने किया था। अच्छा, अब हम सब चलें। वातसल्य भरी मातायें हम लोगों की प्रतीक्षा में होंगी, इतने में ही कुछ वन-देवियाँ एवं प्रमोद-बन-बिहार हेतु आई हुई, देव-गंधर्व-किन्नर और नागों की कन्यायें, वहाँ, आकर "जय हो चक्रवर्ती-कुमारों की' कहती हुई, अन्जलिगत पुष्पों की वर्षा करने लगीं और शिर नत सम्पुटाञ्जलि कुछ दूर जाकर अदृश्य हो गई। हम लोग भी निज-निज भवनों में प्रवेशकर, माताओं के प्यार से संतृप्ति का अनुभव किये।"

यह अपनी आतम-कथा जानकी-वल्लभ ने अपनी सरहज सिद्धि से यहीं आप श्री के भवन में रहस्य वार्ता के रूप में श्रवण कराने की कृपा की की थी, जिसे मैं आज अपने प्राणवल्लभ के श्रवणों का विषय बनाकर, कथा-रसिक को कथा रस पिलाने की सेवा संप्राप्त कर सकी हूँ।

अपनी प्राणवल्लभा श्री सिद्धि-मुख विनिश्रित माधुर्य मिश्रित पर-मैश्वर्यमयी कथा को श्रवणकर प्रेम एवं ज्ञान की दो धाराओं के संगम में मज्जनोन्मज्जन करने लगे। कथाहारी को परमैकान्तिक कथा के श्रवण कराने से, उनके आनन्द में बाढ़-सी आ गई पुनः प्रेमपूर्ण हृदय से उन्होंने स्वयं कथा कहना प्रारंभ किया, अपनी प्रिया के अनुरोध से।

× × ×

६

प्रातः स्मरणीय परम पूज्य गुरुदेव ने अपनी महती अनुकम्पा से, इसे सविधि षड़क्षर राम-मन्त्र का उपदेश देकर, उसके रहस्यार्थं को भी सम ज्ञाने की कृपा की। आप मेरे अभिन्न सखा और प्राणाधिक प्रिय हैं इसलिये गुह्यतम वार्ता को भी आपसे गुप्त रखने में अपने को असमर्थ पाता हूँ। गुरुदेव ने पुनः राम का शिर घ्राण करते हुए कहा कि, "राममन्त्र के रह-स्यार्थ तुम स्वयं हो राम! अतः इस राम-मन्त्र के जपने से, राम! तुम राम हो जाओगे अर्थात् अपने सहज राम रूप में स्थित हो जाओगे। तुम्हीं नहीं अपितु श्रद्धा-भक्ति समन्वित, मंत्र, मंत्र-प्रदाता और मंत्र-देव में एक बुद्धि रखकर प्रीति-प्रतीति तथा सुरीति का निर्वाह करते हुये, कोई भी इस मंत्र का अनुष्ठान करेगा तो वह अपने को राम से अतिरिक्त अकिञ्चित पाकर सहसा बोल उठेगा, रामोऽहं, रामोऽहं, रामोऽहं।"

मैंने कहा, "गुरुदेव ! जिस राम स्वरूप में स्थित हो जाने को मंत्र जप के द्वारा दास को आदेश दे रहे हैं, वह स्वरूप कहाँ रहता है ? उसका स्वरूप कैसा है ? वह क्या करता है ?"

मुस्कराते हुये आचार्य प्रवर ने कहा कि "राम ! बहुत बनो नहीं, तुम सब जानते हो, वह राम अयोध्या में रहता है। तुम जैसा उसका स्वरूप है और तुम जो जो करते हो, वही वही उसका कार्य है।" आचार्य ने संक्षेप में यह बतलाकर कहा, "अब जाओ। मन्त्र-भक्त को मन्त्र कुछ अज्ञापित नहीं रखता।"

गुरुदेव की इच्छा समझकर और कुछ न पूछ सका, उनका सविधि पूजन करके प्रणिपात किया और अमोघ आशिर्वाद ग्रहण करके निज भवन आ गया।

मन्त्रराज के अनुष्ठान में अनुष्ठाता को अलौकिक आनन्द की अनुभूति होने लगी। एक दिन मन्त्रदेव के स्वरूप में स्थित होकर, प्रकृति-संबन्ध के स्पर्श से विमुक्त होकर, चिदाकाश की स्थिति में, एक दृश्य का दिव्य दर्शन हुआ, देखता हूँ कि दिव्य-देश जो सच्चिदानन्दात्मक है, उसमें एक विशाल कल्पवृक्ष है। उसके नीचे एक रत्न मण्डप सहस्रों स्तम्भों से बना हुआ प्रकाशित हो रहा है। रत्न-मण्डप के बीच परम सुहावनी दिव्य रत्न वेदिका है। वेदिका के मध्य देदीप्यमान रत्न सिंहासन है, उसके मध्य परम प्रकाशित दो परम कोमल सहस्र दल वाले कमल हैं। सुन्दर, सुकोमल, कामदार चमकीले स्तरणों से सुशोभित सिंहासन के दोनों कमलों पर, स्वयं राम आपकी अनुजा समेत षोड़श-द्वादश वर्षीय अवस्था एवं नख-शिखान्त वस्त्राभूषणों से युक्त विराजित है। अनन्त सौंदर्य-माधुर्य और सौकुमार्य आदि सहज काय-सम्पत्ति से युक्त आभा से, सभी दिशायें आभान्वित हो रही हैं; तत्पश्चात् अयोध्या और मिथिला का सम्बन्धी समाज अपनी-अपनी रसोपासना के अनुसार, राम के कैङ्कर्य को कर-करके, राम को प्रसन्न कर रहा है एवं उन्हें सुखी देख-देखकर सुखी हो रहा है; पुनः देखता हूँ कि अनन्त वैकुण्ठाधीश विष्णु, अनन्त हरि अवतार और अनन्त ब्रह्माण्डों के अनन्त ब्रह्मा-विष्णु-महेश उन युगल स्वरूपों की स्तुति कर रहे हैं एवं सेवा-साज लिये नतकन्धर सम्पुटाञ्जली खड़े होकर कृपा की याचना कर रहे हैं। अनन्त दासी-दास, सखी-सखा एवं वात्सल्य-रस-रसिक परिकर वृन्द आनन्द-सिन्धु में निमग्न हो रहे हैं। विलम्बित बेला तक इस स्थिति में

स्थित रहा राम, भोजन-समय का अतिक्रमण न हो इसलिये मेरी अम्बा ने, मेरे पूजन कक्ष के बाहर मधुर वाद्यों के साथ इष्ट कीर्तन करने का आदेश परिचारकों को किया, मैं उस स्थिति से अलग हो गया; एकाएक कीर्तन-ध्वनि को श्रवण कर .. ...सखे ! उस स्थिति में भी आपका राम अपने श्याल और सरहज के साथ रहा और आप दोनों की सेवा-कला-कुशलता को देख-देखकर आनन्द विभोर बना रहा, इससे प्रतीति होती है कि आप दोनों, हम दोनों के शाश्वत साथी हैं। सखे ! आचार्यश्री के उपदेश एवं प्रसाद से मन्त्रराज के साक्षात् रहस्यार्थ का दर्शन एवं उसमें स्थिति हो पाई है। उन्होंने कहा है कि, 'कोई भी मन्त्र का अनुष्ठान करके रहस्यार्थ का साक्षात् कर सकता है।' सखे ! यह राममन्त्र रस स्वरूप है, तभी तो मुझे शृङ्गार (मधुर), सख्य, वात्सल्य, दास्य और शान्त रस के परिकरों से की हुई, तत् तत् रस प्रक्रिया युक्त सेवा के सुख की समनुभूति हुई। हाँ, आपने भी कभी इस मन्त्र के अनुष्ठान को करके, उसके रहस्यार्थ का दर्शन किया ही होगा किन्तु आपने उसे, मुझसे गुप्त ही रखा क्यों ? हृदय से लगाकर श्री रसिक शिरोमणि रघुनन्दन ने कहा कि आप भी अपना अनुभव कहें, गुप्त रखने से काम न चलेगा।"

उनके श्याल ने कहा, 'मेरे हृदय बिहारी ! आपसे छिपा ही क्या है ? कोई चाहे भी तो आपसे छिपाने में कौन समर्थ हो सकता है ? मेरा अनुष्ठान है मन्त्रदेव के आश्रय में सर्वसमर्पण भाव से स्थित रहना, जिसमें अनन्यता, अनन्य प्रयोजनत्व, और तत्-सुख सुखित्वम् की भावना सदा समाहित रहती है। यह मेरा अनुष्ठान इष्ट की शक्ति व प्रेरणा से ही सम्भव है। इसका अर्थ यह नहीं कि श्री राम-मन्त्र का अनुष्ठान नहीं करता हूँ, उपर्युक्त अनुष्ठान राममन्त्र के अनुष्ठान का प्रधान अङ्ग है। किसी साधन को उपायतया न ग्रहणकर आराध्य की अहैतुकी कृपा को ही सिद्धोपाय, आचार्य कृपा से समझ पाया हूँ और उसी कृपा बल से, राममन्त्र का वही रहस्यार्थ जापक का बहनोई बनकर, अपने श्याल के साथ मज्जन, अशन और शयन करने में सुखानुभूति करता है, जिसका दर्शन आपश्री ने चिदाकाश की भीत्ति पर किया था और आचार्य प्रवर श्री वशिष्ठ जी ने जिसे आप जैसा अयोध्यावासी कहकर, संकेत किया था तथा राममन्त्र के रहस्यार्थ को सुरक्षित रखने वाली, उसकी आह्लादिनी, अचिन्त्य, अनादि शक्ति अपनी अनुजा बनकर, अङ्क में बैठ अपने भैया का प्यार पाने में ही सुखी होती है। उसी रहस्यार्थ की कृपा से पला पोसा हुआ, बालकपन से ही, उसके

नाम, रूप, लीला और धाम में अनुरक्त रहकर, चारों के रहस्यार्थ के साक्षात् से अछूता न रहा। कृपा वैभव की जय हो, जय हो जिसने आपश्री को अपना कहकर वार्तालाप का अवसर दिया है। मैं तो समझता हूँ कि आपश्री को राममन्त्र के रहस्यार्थ का दर्शन, चिदाकाश में या अयोध्या में जो हुआ था, उस साक्षात् से वैसे आनन्द की अनुभूति न हुई होगी आपको और न होगी कि जैसे आनन्द का अनुभव राम के श्याल को, उस रहस्यार्थ को अपना कहने में होता है और होगा। अरे, भाई! कमल के मकरन्द-सुख की अनुभूति कमल को नहीं होती, पराग-पान का प्रकर्ष सुख तो मधु लोभी मधुप के ही अनुभव में आता है।'' इस प्रकार श्यामसुन्दर रघुनन्दन ने आध्यात्मिक जगत की अपनी कथा सुनाकर तथा श्रोता से तद्रहस्यार्थ विषयकवार्ता सुनकर, श्याल को अपने भुज-पाश में बाँध लिया और कुछ समय तक वे सब भूले रहे; प्रति सम्बन्धी भी उस असीमानन्द के सिन्धु में अस्त हो गये। कुछ काल के पश्चात् प्रकृतिस्थ होने पर, अपने प्रति अपनी सरहज की प्रीति की प्रशंसा सूचक वार्ता करते-करते भाम, श्याल के साथ एक ही शय्या पर सो गये। अपने पति परमेश्वर से कथा-श्रवणकर, अतृप्त श्रीसिद्धि कुँवरि जी पुनः राम-कथा श्रवण कराने की आतुरता प्रकट कर, कर-बद्ध हो गई।

७

सुरम्य सरयू पुलिन, परम पावन एवं अपनी प्रकृति-प्रभा से सम्पन्न होने के कारण, सुगन्धित शरीर वाली सुर-सुन्दरियों और अप्सराओं को सुरगणों सहित अपने प्रदेश में विहार करने के लिये बाध्य कर देता है। मनोरम मणिमय घाट, खिले हुये सुरभित सरोजों पर गुंजार करती हुई काली-काली भ्रमरों की सुन्दर श्रेणियाँ, घाटों पर तुलसी-पुष्प के उद्यान, कोमल-कोमल हरित दूर्वादल से युक्त हरित विस्तृत बिछावन से आच्छादित-सी तटवर्ती भूमि, पुष्पित अनेक प्रकार के वृक्षों की सुहावनी पंक्तियाँ, नाना प्रकार के पक्षियों का कलरव, मयूरों के नृत्यकारी झुण्ड, इधर-उधर दौड़ती व विचरती हुई मृगटोलियाँ और शीतल-मन्द-सुगन्धित वायु, सुर-नर-मुनियों के मन को मुग्ध करने वाला सिद्ध हो रहा है; यही कारण है कि बहुत से ऋषि, मुनि, योगी, सन्यासी, सरयू किनारे कुटिया बनाकर, अपनी साधना में संलग्न रहा करते हैं। अवध नगर के समीपी सरयू तट पर, बहुत से

विशाल मन्दिर, अपनी नव्य-भव्य रमणीकता से लोगों के चित्ताकर्षक सिद्ध होते हैं।

एक दिन सेवक व सखाओं के साथ हम चारों भाई, वस्त्राभूषणों से भूषित चार रंग के सुन्दर सजे-धजे घोड़ों पर चढ़कर, सरयू के किनारे-किनारे वनराजि के दृश्यों का दर्शन करते हुये विहार कर रहे थे। मनुष्य-पशु-पक्षी एवं सरयू के जलचर जीव,अपने नेत्रों का विषय बनाकर, बहु-संख्यक हम लोगों के अश्वारोही रूप के रस को अपने-अपने दृग-द्रोणों में भर-भर कर पान कर रहे थे। रूप-रस के रसिक गगनगामी विमानों में चढ़े देव-देवियाँ, पुष्प-वर्षा के बाहुल्य से, तटवर्ती भूमि को उदित नक्षत्रों से युक्त आकाश बना रहे थे।

हम लोग विहार से उपरत होकर, सरयू के मणिमय घाट के ऊपर विनिर्मित मणिमय चबूतरे पर, सेवकों के बिछाये हुये आसनों में बैठ गये पुनः सरयू की सुन्दर त्वरावति धवल-धारा के दर्शन एवं कलकल नाद के सुनने में अपने-अपने मन को रमाने लगे, आनन्द सब लोगों को चारों ओर से आवृत्त किये हुये, अपने को धन्य समझ रहा था।

"भरत ! सरयू-धारा का दर्शन हम लोग अब ध्यान की आँखों से करें, देखें कितना आनन्द आता है।" आपके राम ने कहा। चारों भाई ध्यानस्थ हो गये पद्मासन में बैठकर। ध्यान के प्रारंभ में सरयू धार का दर्शन होता था पुनः क्रमशः सरयू का शब्द व अर्थ भी जाता रहा, किंचित अस्मिता रही पुनः भावातीत स्थिति आने पर एक सत्य सत्ता रह गई, जिसकी सत्यता से सब सत्य-सा प्रतीत होता है, कुछ समय बीत जाने पर सब लोग प्रकृतिस्थ हुये।

"भरत ! ये सरयू जी कहाँ बह रही हैं ?" राम ने प्रश्न किया। 'ये सरयू जी हमारे अयोध्या नगर के उत्तर दिशा में बह रही हैं।" भरत ने उत्तर दिया। "इनका दर्शन सब लोग किस इन्द्रिय से कर रहे हैं ?" "नेत्र इन्द्रिय से कर रहे हैं भैया।" "ध्यान के प्रारंभ में इनका दर्शन हम लोग किस इन्द्रिय से और किस प्रदेश में कर रहे थे, भरत ?" "मन की आँखों से चित्त-प्रदेश में कर रहे थे, प्रभो!" "पुनः ध्यान के आगे की स्थिति कैसी रही ?" "धीरे-धीरे सरयू की धार चित्त-प्रदेश से विलीन हो गई।" "पुनः क्या हुआ भरत ?" "सरयू शब्द और अर्थ दोनों न रहकर, नाम-मात्र अस्मिता रह गई तत्पश्चात् भावातीत की स्थिति हो जाने से अस्मिताहीन सत्ता रह गई, न मैं रहा न मेरा न संसार रहा न असंसार।" "भरत ! इस

अयोध्या और सरयू का दर्शन पुनः कैसे हुआ हम सब को ?'' ''प्रभो ! जैसे प्रति प्रभव के द्वारा प्रथम स्थिति दूसरी में और दूसरी, तीसरी में क्रमशः विलीन होती गई, (सरयू का दर्शन आँखों से जैसे मन में विलीन हुआ था। पुनः भावातीत सत्ता में विलीन होकर, समय पर संस्कारवश, उसी सत्ता से प्रभव होना प्रारंभ हो गया, प्रभो ! अन्त में पुनः सरयू के दर्शन करते हुये हम सब स्थित हैं।'' ''अच्छा भरत ! यह बताओ कि जिसमें सरयू लीन हो हो गईं और जिससे क्रमशः प्रगट हुईं, वह सरयू का उद्‌गम स्थान अर्थात् उपादान और निमित्त कारण है कि अन्य कोई ?'' ''वही भावातीत तत्व कारण है।'' ''तो भाई ! सरयू उसी तत्व में बहती हुईं, दर्शन दे रही हैं कि अन्य तत्व में ?'' ''नहीं भैया ! अन्य तत्व में नहीं बह रही हैं, जिसमें जो वस्तु लीन होती है और जिससे उत्पन्न होती है, उसीमें उसकी मध्य स्थिति भी होती है जैसे, विद्युत-प्रवाह विद्युत ही में लीन होता है, विद्युत ही से प्रकट होता है और विद्युत ही में बहता है प्रभो !'' ''भरत ! तो उस भावातीत स्थिति को ही ब्रह्म-स्थिति व ब्रह्म कहते हैं ब्रह्मविद लोग, यह समझने में तुम्हें विलम्ब न हुआ होगा क्यों ? सरयू की भाँति ही यह संसार उसी भावातीत ब्रह्म में स्थित है तथा उसी में लीन होकर पुनः उसी से प्रगट होता है, यह बोध तुम्हारे बुद्धि का विषय बन गया होगा, ऐसा अपना विश्वास है।''

''प्रभो ! आपकी कृपा से अज्ञ जीव भी, उस स्थिति को सरलता से जब समझ सकते हैं, तब आपके दास समझ जाँय, इसमें क्या आश्चर्य !''

''लक्ष्मण ! भावातीत परब्रह्म परमात्मा से भाव स्वरूप जगत की उत्पत्ति कैसे संभव होगी ? शंका वादियों की शंका का समाधान करने के लिये तुम चिद्‌घन स्वरूप भावातीत ध्यान में पूर्ववत स्थित हो जाओ, श्री सरयू जी की कृपा से, संकल्पानुसार तुम्हें उस भावातीत के आकाश में स्थित सत्य का दर्शन हो जायगा।'' ''आपश्री की आज्ञा का पालन अविलम्ब होगा।'' लक्ष्मण ने कहा; ध्यान-स्थिति में स्थित होकर पुनः प्रकृतिस्थ होने पर सुमित्रानन्दन ने बताया ······''दास ने भावातीन ध्यान में स्थित होकर देखा कि परब्रह्म परमात्मा पुरुषोत्तम भगवान की अपृथक भूता स्वरूपा शक्ति, जो अचिन्त्य और अनादि है, अपने अनंत दिव्य गुणों से, अपने को अदर्शित यवनिका के भीतर रखती है। उस आदि शक्ति का स्वरूप परम पूज्या सुनयनानन्दवर्धिनी जी से सर्वाङ्गीण मिलता था। वे अपनी जगत कारिणी अनन्त शक्तियों से सेवित हो रही थी अतः वह जगत की कारण-

भूता हैं अर्थात् वह अगोचर भावातीत परब्रह्म परमात्मा स्वयं अपनी सहज-शक्ति से, जगत-रचना-कार्य किया करता है, निश्चय हुआ।

"शत्रुघ्न ! भावातीत पुरुष परब्रह्म परमात्मा, युगपद विरोधी धर्मों का आश्रय है, वेदों ने उसे एक साथ निर्गुण और सगुण लक्षणों से संयुक्त कहा है किन्तु शंकालु लोग कहा करते हैं कि जो सगुण है वह निर्गुण कैसे और जो निर्गुण है, वह सगुण कैसे कहा जा सकता है, एक साथ। अतः तुम भी लक्ष्मण की तरह ध्यानस्थ होकर, उक्त संशयहीन सिद्धान्त का दर्शन भावातीत ब्रह्म की भीति पर करो।"

आज्ञा का अनुवर्तन अभी हो रहा है, कहकर कुमार ध्यानस्थ हो गये। भावातीत की स्थिति में संकल्पानुसार दृश्य का दर्शन करके कुछ समयोपरान्त प्रकृतिस्थ होकर कहने लगे कि······भैया ! भावातीत अवस्था में आपश्री के स्वरूप का ही साक्षात् चमत्कार पूर्ण दर्शन हुआ, वह पुरुष सर्वाङ्गीण आप में अपना अभेद सिद्ध करता था। भावातीत की ब्राह्मी स्थिति में एक साथ निर्विशेषता और सविशेषता, सगुणत्व-निर्गुणत्व तथा साकारत्व-निराकारत्व का दर्शन उसी प्रकार होता था जैसे जलाशय में पड़ने वाले सूर्य के प्रतिबिम्ब में एक साथ हरे, पीले, लाल आदि रंगों के चमत्कृत दृश्य का। उस स्थिति में मुझे अपनेपन का व अपने से अतिरिक्त किसी अन्य सूक्ष्म स्थूल, प्राणि-पदार्थों का ज्ञान न था और न ज्ञान-अज्ञान का ही ज्ञान था। ध्याता-ध्यान और ध्येय की त्रिपुटी विलीन थी, प्रकृतिस्थ होने पर उस स्थिति के सत्य के दर्शन का ज्ञान, बुद्धि के दर्पण में चमक जाने से स्मृति-पटल पर अंकित हो गया है।" कहकर शत्रुघ्न कुमार अपने बड़े बन्धु लक्ष्मण और भरत के साथ, आपके राम के चरणों में पड़कर अपने अश्रु-बिन्दुओं से उनका प्रेमपूर्वक प्राक्षालन किये तत्पश्चात् कहने लगे कि—"आप युगल मूर्ति ही सब जगत के कारण हैं, सबके सर्वस्व हैं, आप ही जगत रूप में प्रतिष्ठित हैं, आपकी जय हो, जय हो, जय हो। भाव और भावातीत की स्थिति आप ही में स्थित है।

ऊपर आकाश से पुष्प-वृष्टि होने लगी और अपने अनुजों के ज्ञान का प्रमाणीकरण ब्रह्म-गिरा से होते ही, राम संकोच मुद्रा में स्थित हो गया तत्पश्चात सरयू के जल को स्पर्श व प्रणाम करके हम लोग घोड़ों में सवार होकर, नगर-वासियों के नयनोत्सव बने हुये, सब से सम्मानित, उत्सव साधन के साथ राज भवन में प्रवेश किये।

"इस प्रकार श्रीराम रघुनन्दन ने मुझसे यह एकान्तिक अपना चरित्र स्वयं श्रीमुख से, यहीं मिथिला में श्री कमला जी के तट पर बिहार करते समय बताया था, जिसे आज मैं अपनी प्रियतमा के कर्णों तक पहुँचा सका हूँ।" दम्पति श्री सीताराम जी हमारे हैं, स्मरण कर भावनास्पद के भाव में विभोर हो गये पुनः प्रकृतिस्थ होकर श्री सिद्धि कुँवरि जी कथा श्रवण कराने की प्रेरणा अपने प्राणवल्लभ को देकर, साश्रु विलोचना रसिक श्रोता की मुद्रा में स्थित हो गईं।

× × ×

८

अनुपम आश्रम की अत्यधिक रमणीयता राम के मन को रमाने वाली आकर्षक थी। प्राकृतिक दृश्य दर्शनीय एवं परम सुहावना था। श्री सरयू का पावन पुलिन, पुष्पित उद्यान, केले और नारियल की सफल वृक्ष पंक्तियाँ आम, कटहल, निम्बू, आदि के बृहद बगीचे नन्दन वन के श्री का अपहरण-सा कर रहे थे। मनमोहक मृग-शावकों का इधर-उधर चौकड़ी भरना मयूरों का मधुर कूक के साथ पंख फैलाकर नृत्य करना, अन्य पक्षियों की चह-चहाहट तथा भ्रमरों की गुन-गुनाहट द्वारा आश्रम की शोभा श्री का गान-सा हो रहा था। कामधेनु की पुत्री नन्दिनी का गौओं के साथ वहाँ विचरना, नक्षत्रावली के मध्य पूर्णचन्द्र का गगन में गमन करना-सा प्रतीति का विषय बनता था। ऋषियों, मुनियों एवं ब्रह्मचारियों के रहने के लिये कलाकारी से बनाये हुये, सर्वकाल सुखावह उटजों की बहुतायत जहाँ-तहाँ सूखने के लिये फैलाये हुये, आश्रमवासियों के गमछे, कौपीन, आड़बन्द वल्कल-वस्त्र एवं मृगचर्म आदि आश्रम की शोभा को समुन्नतशील बना रहे थे। यज्ञ-वेदियाँ, यज्ञस्तम्भ, यज्ञशाला, यज्ञधूम और वेद पाठ आदि देवताओं को वहाँ पहुँचकर दृव्यादि ग्रहण करने के लिये बाध्य कर रहे थे। उच्चाति उच्च ध्वज पताकाओं की फहरान, आश्रम के कीर्ति का उल्लेखन गगन की भीति पर कर-करके, दिवंगत जीवों एवं सुदूर धराधाम वासियों को, आश्रम का दर्शन करने के लिये, वहाँ पहुँचने का संकेत सा कर रही थी। सत्संग शाला और अन्य साधनादि के समुचित स्थान, दर्शनमात्र से दर्शकों के शोक-मोह आदि दोषों का दमन करने वाले सिद्ध हो रहे थे। सबके मध्य बनी हुई पर्णशाला में विराजित रघुकुल के आचार्य प्रवर मुनि श्रेष्ठ श्री वशिष्ठ जी महाराज, श्री माँ अरुन्धती जी के साथ, सूर्य-प्रभा के समान दैदीप्यमान

( )

हो रहे थे, लगता था कि ब्रह्मलोक से साक्षात् ब्रह्मा, श्री सावित्री जी सहित अवनीतल पर पधार कर अपनी विनिर्मित सृष्टि का अवलोकन कर रहे हैं। आदित्य प्रभआचार्य श्री त्रिभुवनवासी, सुर-नर, नाग और मुनियों से सेवित, सर्व वन्दित चरण, त्रिकालदर्शी, दूरदर्शी और सूक्ष्मदर्शी महापुरुष एवं ब्रह्मविद वरिष्ठ ब्रह्म-स्वरूप हैं।

जिस समय हम चारों भाई आश्रम में ब्रह्मचर्य व्रतधारी बनकर विद्याध्ययन करते थे, उस समय चारों राजकुमार आश्रम सेवा के प्रत्येक प्रकार को आचार्य श्री की अंग सेवा समझकर उसके संपादन में अपना सौभाग्य समझते थे। सेवा करने में अतिरुचि होने के कारण हर्षातिरेक की स्थिति को देखकर आचार्य श्री ने अपने अमोध आशीर्वाद का पात्र हम लोगों को वरण कर लिया था।

एक दिन एकाकी आश्रमवासी मृग को, कोमल-कोमल हरी घास के अग्र समूहों को लाकर पवाते देख, अपनी पर्णशाला में श्री अरुन्धती जी सहित बैठे हुये गुरुदेव ने, अपने प्रिय राम को संकेत से बुलाया, उसने वर्तमान स्थिति के अनुसार शीघ्र शाला में पहुँचकर, गुरु व गुरु पत्नी के चरणों में साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। आचार्य श्री ने उठाकर मुझे अपने अङ्क के आसन में बैठा दिया और दोनों भुजाओं में भरकर साश्रु विलोचन लगे राम को अपने हृदय से बार-बार लगाने, बारी-बारी से गुरु-पिता और माँ गुरु-पत्नी अपने अङ्क में आसीन कर-करके लाड़-प्यार करते किन्तु अतृप्ति का ही अनुभव करते, दोनों इस शिष्य के शिर को घ्राण करते, अश्रुजल से अभिषेक करते, अनेक-अनेक अमोघ आशीर्वादों के आभूषणों से अलकृत करते किन्तु नेह-नदी के किनारे नहीं लग रहे थे। कुछ काल में धैर्य धारण कर, गुरुदेव ने अपने प्रिय शिष्य के कपोलों में, अपने पाणि-पंकज का शीतल सुखद पराग बिखेर दिया पश्चात ठोढ़ी में स्वकर रखकर, अपनी अनन्त प्यार भरी दृष्टि को राम की दृष्टि का विषय बनाकर गद्गद् वाणी में बोले वे ......"क्यों राम ! तुम पर मेरा इतना अनुराग होने का हेतु क्या है?" "आपका हार्द्र वैशिष्ट्य एवं हार्दानुग्रह ही इसमें कारण है, गुरुदेव !"--संकोच से शिर नत होकर कहा मैंने। "राम ! तुमको यह ज्ञान कैसे हुआ कि गुरुदेव का हृदय-कोष कृपा एवं करुणा का केन्द्र है।"

"शास्त्रों, सन्तों और स्वयं आचार्य मुख से सुना हूँ कि, साधु स्वभाव अकारण कृपा के आकार का होता है। शिरनत मैंने कहा कि आपश्री की

दयार्द्रता का अनुभव तो आपका राम अहर्निश करके ही, आपका कहलाने योग्य बना है।

"तो क्या मेरा ज्ञान तुम्हें सर्वभावेन है ?"

"प्रभो ! चिदघन स्वरूप ज्ञान मूर्ति का पूर्ण ज्ञान किसी जीव की जड़ बुद्धि कैसे कर सकती है ? तत्वमसि के लक्ष्य का ज्ञान, उत्तम, मध्यम और अन्य पुरुष के ज्ञान से अभिभूत पुरुष को असंभव है। भावातीत का ज्ञान भाव से भरी बुद्धि से कदापि नहीं हो सकता।" मैंने कहा। "तो तुम मेरे पास ब्रह्मविद्यादि अध्ययन करने के लिये बिना मुझको जाने ही आ गये ?"—गुरुदेव ने कहा।

"गुरुदेव समुद्र का अगाधत्व एवं उसका महनीयत्व बिना जाने ही नदियाँ अपने-आप उसमें मिलकर ही शान्ति का समनुभव करती हैं।"

"राम ! तुम्हारा सही परिचय क्या है ?"

"इक्ष्वाकु कुलोद्भव दाशरथि राम, आपके दास का परिचय है, प्रभो !"

"मुझ अपने गुरु से अपने को परोक्ष में रखने से तुम्हारे कौन से कार्य की सिद्धि होगी राम !" "आप से कपट रखने में, मैं स्वयं असिद्ध हो जाऊँगा, भगवन !" "तो फिर यवनिका के भीतर मेरे सामने क्यों अपने को स्थित कर रहे हो, रघुनन्दन !" दास तो अपने आचार्य देव के सामने त्रिकरण बिना कपट के जैसा है, वैसा स्थित है, देव !" "अच्छा बताओ ब्रह्मविद्या प्राप्त करने का, मुझसे क्या प्रयोजन था तुम्हारा ?" "ब्रह्म ज्ञान द्वारा ब्रह्म प्राप्ति रूप महाफल का पाना मात्र प्रयोजन था, नाथ !" "तो ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान एवं उसकी प्राप्ति हो गई है या नहीं ?" "आपकी सांकेतिक वाणी के द्वारा ब्रह्म-बोध के रहस्य को कुछ समझ सका हूँ अन्यथा अनन्त का ज्ञान शान्त कैसे करने में समर्थ हो सकता है ?"

"अपने ज्ञान से तुम अपने जाने हुये ब्रह्म से अपने को अतिरिक्त पाते हो क्या ?" "नहीं-नहीं प्रभो ! पुत्र की सत्ता पिता के अतिरिक्त कैसे सिद्ध हो सकती है ? अंग अंगी से पृथक होकर अपना अस्तित्व कैसे रख सकता है ? इसी प्रकार ब्रह्म-दास जीवात्मा, ब्रह्म से अतिरिक्त अपनी स्थिति असिद्ध ही पाता है, प्रभो !" "राम ! वाक्पटुता एवं वाक्मधुरता व वाक् सत्यता से अपने को अपने कथनानुसार सिद्ध करने में पूर्ण समर्थ हो तुम। राम ! तुम्हारे दिव्यातिदिव्य अनन्त गुण मेरे हृदय में प्रेम प्राबल्य को

उत्पन्न कर तुम्हें देखे बिना मुझे नहीं रहने देते हैं राम ! तुम्हें मैं भली-भाँति अपने पिता जगद्गुरु ब्रह्मा जी की कृपा से जानने में समर्थ हो सका हूँ। राम ! वेद वेद्य परम तत्व परब्रह्म परमात्मा तुम्हीं हो। जगत के उपादान, निमित्त व सहकारी कारण तुम्ही हो। अनन्त ब्रह्मा, विष्णु और महेश तुम्हारी शक्ति व प्रेरणा से जगत कार्य करने में समर्थ होते हैं। जगत के रूप में तुम्हीं विराज रहे हो, तुम सर्वात्मा सर्वरूप हो, अस्तु तुम मुझसे अपने को छिपाना चाहते हो किन्तु मैंने तुम्हारी आँखों से तुम्हें देखकर पहचान लिया है।''

''गुरुदेव मैं आपसे कैसे छिप सकता हूँ, जो हूँ, जैसा हूँ, वह आप जानें, दास तो इतना ही जानता है कि मैं अयोध्याधिपति चक्रवर्ती नरेश का पुत्र राम हूँ और आपका दास हूँ।''

''राम ! आश्रम की सब सेवायें अयोध्या नरेशों के द्वारा ही चलती आ रही हैं, समय-समय पर अतिरिक्त धन समर्पण ही नहीं, सर्व समर्पण की अनुभूति हमें होती ही है, परन्तु आज तुमसे मुँहमांगी सेवा हमें लेनी है। अब तुम्हें ब्रह्मचर्य व्रत का समापन करके स्नातक होने की विधि को अपनाकर गृह लौटना होगा, उसका मुहूर्त भी समीप आ गया है अतः बोलो जो हम माँगे दोगे कि नहीं !'' ''लगता है कि दास के सर्व समर्पण की न्यूनता अपना मुख दिखा-दिखाकर आचार्य श्री के मन में सन्देह उत्पन्न कर रही है, अश्रु विमोचन करते हुये राम ने गद्गद् वाणी में कहा, नाथ ! जैसे अपने उपयोग में आने वाली वस्तुओं से आपश्री नहीं पूछते कि तुम हमारे काम आओगी कि नहीं। उसी प्रकार दास भी आपका शेष, योग्य और रक्ष्य है, अस्तु पूछने की क्या आवश्यकता ? जो सेवा लेना चाहें, दास सहर्ष उस सेवा में तत्पर है।''

''राम ! तुम वही राम हो जिस राम में वीतराग योगीजन रमण किया करते हैं, अस्तु, तुम मुझे सर्वभावेन सर्व समय; सर्व देश में पूर्णतः प्राप्त रहो। तुम में मेरी अनुरक्ति अहर्निशि बढ़ती रहे और इसी रूप से तुम मेरे हृदय के हार व अङ्क में आसीन बने रहो, तुम्हारे सगुण साकार विग्रह के नाम रूप, लीला और धाम मेरे रमने के मात्र स्थान हो। तुम्हारी कोई लीला मुझसे छिपी न रहे, बस यही दक्षिणा मुझे प्रदान करो''—गुरुदेव ने कहा।

''जब यह दास सर्वभावेन आपका है तो इससे सम्बन्धित सारी वस्तुयें आपकी हैं और इसका किया हुआ कार्य आपका कैङ्कर्य है। आपश्री

आशीर्वाद दें कि दास आपके श्रीमुख विकास हेतु आपको प्रिय लगने वाले कैङ्कर्य करने में सफल हों।" ऐसा आपके राम के कहने पर गुरुदेव एवं गुरु पत्नी ने मेरा अत्यधिक लाड़-प्यार करके खूब-खूब आशीर्वाद दिया। उसी आशीष के प्रभाव से जो कार्य हुये हैं, हो रहे हैं और होंगे, उन्हें आप जाने।"

"यह कथा, जब अयोध्या गया था मैं, उस समय श्री महर्षि वशिष्ठ जी महाराज के आश्रय में उनका दर्शन और प्यार पाकर सब कुछ पा गया था, कृतकृत्य हो गया था .यह श्रीराम का श्याल। आश्रम में सरयू-घाट पर बैठकर यह कथा राम-मुख से ही सुनी थी हमने" श्री लक्ष्मीनिधि जी ने कहा। सुनकर लक्ष्मीनिधि-वल्लभा अपने भाग्य-वैभव की स्मृति से विभोर हुई सी मुद्रा में स्थित होकर, पुनः कथा रस के श्रवणानन्द ने उन्हें कथा श्रवण कराने के लिए अपने प्राण प्रीतम के चरणों में पड़ाकर पुनः करबद्ध मुद्रा में स्थित कर दिया।

× × ×

६

"वत्स राम! गोद में तुम्हें बैठे अवलोक कर त्रिभुवन के नर-नारी कौशल्या के भाग्य वैभव की प्रशंसा करने के लिये, किसी अदृश्य शक्ति से बरबस प्रेरित हो जाते हैं, अस्तु, अहोभाग्यम्महोभाग्यम् दशरथस्य अन्तःपुर सुस्त्रीणाम्' सर्वमुख से यह वाक् विसर्ग सुनकर, परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान की अहैतुकी कृपा के सम्मुख शिर बार-बार झुकने लग जाता है और तुम्हारी यह माँ, तुम्हारा मंगलानुशासन कर-करके सदा अपने लोने लाल के मुख चन्द्र को देख-देखकर जीने की आसक्ति से युक्त हो जाती है। एक दिन मैंने स्वप्न देखा कि मेरा राम सूर्यमण्डल में अपनी स्वरूपा शक्ति से समन्वित स्थित है। ब्रह्मादि सब देव नतकन्धर, सम्पुटाञ्जली स्तुति कर रहे हैं और अपनी स्तुति के सन्दर्भ में, राम को जगत का कारण, सर्वाधार, सर्वसमर्थ स्वामी बताकर अपने को सृष्टि कार्य की सेवा करने वाला सेवक कह रहे हैं। मेरे लाल! सबको आश्वासित कर, तुम वहाँ से धीरे-धीरे उतर आये और अपनी मैया के अंक में आसीन होकर ऐसे लिपट गये जैसे किसी से भयभीत हो गये हों, पुनः भूख लगी है जानकर मैंने अपने लाल को अपने हाँथ से सुन्दर स्वादिष्ट भोजन कराया, ततपश्चात् बहुत विधि लाड़-प्यार करते-करते जग गई। राम! तुम्हारा सूर्यमण्डल स्थित स्वरूप ऐश्वर्य का

उलङ्घनीय स्वर्णमय सुमेर पर्वत था जबकि अपनी मैया के अंक में स्थित स्वरूप माधुर्य का महोदधि है, मैं संशयग्रस्त हो गई हूँ—तुम अपनी माँ के इकलौते लाल हो कि सबसे स्तुत्य परब्रह्म परमात्मा हो ? अपने वत्स को अपने अंक का विषय न बनाने की कल्पना मुझे शोक और आपत्ति के आर्णव में केश पकड़कर डुबाने के लिये प्रयत्नशील हो जाती है अतएव बताओ वत्स ! स्वप्न दृश्य सत्य है कि अपने लाल को गोद में स्थित पाकर आनन्द की अनुभूति सिद्ध है ।''

''माँ ! आपका राम चाहे परब्रह्म हो या परमात्मा अथवा भक्तों का भगवान हो परन्तु है आपके प्यार से पलापोसा आपका लाड़ला लाल । आप चिन्ता की चिनगारी से जलने की चेष्टा न करें । माँ ! किंचित काल के लिये कल्पना करें कि आपके लाल का स्वप्न के सूर्य में स्थित स्वरूप सत्य है तो इसमें कौन सी हानि है । किसी माँ का पुत्र यदि त्रिभुवन का राजा बन जाय तो उसके गौरव और आनन्द की सीमा क्या रहेगी ? इस प्रकार पर-ब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान का पद यदि आपका पुत्र पा गया गुरुजनों की कृपा से तो इसमें शोक नहीं अपितु आपको आनन्दोत्सव मनाना चाहिए, स्वप्न भविष्य की सूचना देने वाले सत्य से संयुक्त भी होते हैं, माँ ! संभव है वह पद आपके राम को मिल जाय, अतः आज आनन्दोत्सव मनाकर साधु ब्राह्मणों और अतिथिजनों का महा सत्कार होना चाहिये । उन्हें भोजन, वस्त्र, दान-सम्मान देकर अति संतुष्ट करना चाहिये, जिससे उनके अमोघ आशीर्वाद से परब्रह्म परमात्मा और भगवान का परमपद आपके लाल को सहज मिल जाय । अरी मैया ! आप बड़ी भोरी-भारी हैं, जब कीट-पतंग के पुत्र में भी परब्रह्म पूर्ण रूप में स्थित है और वह ब्रह्म के अतिरिक्त सत्ता वाला सिद्ध नहीं होता तो आपके पुत्र होने का जिसे सौभाग्य प्राप्त है, उसे ब्रह्मस्वरूप स्वप्न में देखना कौन अनहोनी और आश्चर्य की वार्ता है ? फिर स्वप्न तो जाग जाने पर असत्य ही हो जाते हैं इसलिये स्वप्न-दर्शित दृश्य को जागतिक दृश्य की सत्यता से अपने मन की भीति से मिटा दें । राम तो अपनी माँ का प्यारा दुलारा लाड़ला लाल है, अन्य कुछ नहीं। अब राम की अम्बा अपने आँखों से अश्रु-विमोचन करना छोड़कर, अपने मन को अपने नयनों के तारे राम में ही रमाकर अपने लाल का लालन करेगी ।'' आपका राम पुनः अपने पीताम्बर से अपनी मैया के नेत्र-बिन्दुओं को पोंछकर, इसके हृदय से लिपट गया । मैया का शोक राम के संकल्प का अनुवर्तन करके अदृश्य के उदर में चला गया । मैया कौशिल्या ने अपने प्यारे वत्स की मंगल

कामना से खूब भोज-भंडारा किया, आनन्दोत्सव मनाया, गो-धनादि देकर ब्राह्मणों को दान-मान से संतुष्ट किया।

इस प्रकार कौशिल्यानन्दवर्धन ने अपने माँ की वात्सल्य भाव-भावित कथा मुझे अयोध्या में ही सुनायी थी। मिथिलेश कुमार ने सिद्धिकुँअरि जी से कहा।

राम-कथा की रसिकनी श्री लक्ष्मीनिधि-वल्लभा पुनः अपने ननदोई की प्रेम-गाथा गाने के लिये अपने पति परमेश्वर को प्रेरणा देकर सम्पुटाञ्जली हो गईं।

× × ×

१०

अहो ! सर्वभूत सुहृद चक्रवर्ती कुमार रसिकेश्वर राम अपने आत्म सखा के पाणि पंकज को पकड़कर, सरयू तटस्थित शत्रुञ्जय नामक नख-शिख सुसज्जित गजराज पर बैठे हुये वसन्त ऋतु के मधु-माधव नामक दो मास के सदृश शोभायमान हो रहे थे, शिर के ऊपर लहरदार चन्द्रोपम समुज्वल छत्र, दोनों पार्श्व भागों में चलते हुये चमर, युगल कुमारों की शोभा परिवर्धित कर रहे थे। शेष तीनों चक्रवर्ती नन्दन अन्य मैथिल राजकुमारों के साथ नख-शिखान्त आभूषणों से आभूषित वायु वेगशाली अच्छी जाति के नवीन सुन्दर घोड़ों पर चढ़े हुये शत्रुञ्जय को बीच में रखकर चल रहे थे, वादक लोग वाद्यों की तुमुल ध्वनि से अवनि और आकाश को शब्दायमान कर रहे थे। विप्रों द्वारा की हुई वेद ध्वनि, बन्दी, भाँट, चारण, मागध-सून आदि से गाई हुई विरुदावली एवं गुणगणावलि अपूर्व आनन्द की अनुभूति करा रही थी। नट-नर्तक और विदूषक अपने-अपने कार्य-कौशल्य का प्रदर्शन कर रहे थे। देव-कन्याओं के समान अलङ्कृत पुर-कन्यायें दीपों से जगमगाते कनक-कलशों को शिर में रखे हुये, समाज की शोभा को समुन्नतशील बना रहीं थी, जनपद एवं पौर समाज यथोचित स्थान में स्थित पुर की ओर चलने को उद्यत था। श्री चक्रवर्ती जी महाराज से प्रेरित उक्त समाज, सीताकान्त की अध्यक्षता में सीताग्रज की अगुआनी के लिये आया हुआ ज्यों ही सरयू किनारे से पुराभिमुख गतिशील हुआ त्यों ही भूमि और नभ में नगाड़े बजने लगे, जय जयकार की ध्वनि दसों दिशाओं को व्याप्त कर छा गई, पुष्प वृष्टि से पृथ्वी ढकने लगी, आनन्द के सिन्धु में उत्ताल उर्मियाँ उठने लगीं। सभी अयोध्या नगर निवासी निमिकुल-सर-सरोज के

विकसित तथा सुन्दर सुरभित पराग का पान करने के लिये आशा और आकांक्षा को सँजोये हुये स्वर्णिम समय की प्रतीक्षा में थे। आज सबकी आशा-लता निमिकुल चन्द्र की सुधासिक्त किरणों से पल्लवित और पुष्पित हो उठी है, बधाई है ··· बधाई , ऐसा शब्द जहाँ-तहाँ लोगों के मुख से निकलकर श्रवणों का विषय बन रहा था। श्री राम श्याल सीताग्रज के मन-वाक् अपने सौभाग्य सीमा का सही अंकन करने में असमर्थ थे। अपूर्व-भूत सम्मानित गौर वपु, सुर-नर-मुनि-वन्दित श्याम वपु के स्पर्श से उत्पन्न आनन्द के सिन्धु में अस्त होते हुये भी, अस्त होने वाले सूर्यकान्ति के सदृश अपने श्रीमुख के दर्शन-दान से श्यामसुन्दर के कर्णावलम्बित नलिन-नेत्रों को सुखशीतलता प्रदान कर-करके भी, उन्हें अतृप्ति का अनुभव करा रहा था। श्याल-भाम को अनुपम अनिर्वचनीय जोड़ी अपने श्याम गौर तेज से, समस्त समाज में प्रकाश बिखेर रही थी। दोनों की काय सम्पत्ति कोटि-कोटि मदन-मद-मर्दनकारी शारदीय शतशत शशि की आभा का अपहरण करने वाली सिद्ध हो रही थी। भूमि, व्यौम पथचारी समाज पुष्पों की बार-बार वर्षा करके युगल नवल नृप कुमारों की जय-जयकार कर रहा था, विविध वाद्य बज रहे थे, मंगल गीत गाये जा रहे थे, आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

अयोध्याधिपति नन्दन एवं मिथिलाधिपति नन्दन एक दूसरे के दर्शन, स्पर्श और वार्तालाप से उद्भव को प्राप्तकर दोनों पाने योग्य वस्तु की पूर्ण प्राप्ति कर रहे थे, गजारूढ़ मधुर-मधुर युगल कुमारों की मुसकान-माधुरी से युक्त मन्द-मन्द वार्ता करने की मुद्रा एवं चित्तापहारी चितवनि, सबके मन को मुग्ध कर रही थी। उस समय देश-काल और स्वयं का ज्ञान लुप्त-सा था। अवसर अनुकूल जानकर ······"सखे ! आज के नयनाभिरामीय दिवस की प्रतीक्षा कब से हमारे नेत्र नित्य कर रहे थे, इन्हें कैसी कठिनाई का अनुभव करना पड़ता रहा, यही जानते हैं किन्तु वाणी के अभाव में ये अपनी यथार्थ स्थिति आपके सम्मुख रखने में भी असमर्थ हैं, पूर्व दिशा इन्हें बहुत प्रिय थी। पागलों की भाँति किसी को उस दिशा से आते देख और अपने विषय की प्राप्ति न प्राप्तकर अश्रु बहाना इनका धन्धा बन गया था, आज ये शीतल होकर संतृप्त तो हुये किन्तु विषय का अनुभव करते हुये भी तृप्त नहीं हो रहे हैं। हृदय भी आज अत्यानन्द की अनुभूति कर करके सर्वाङ्गों को आनन्द प्रदान कर रहा है। अयोध्या वासियों के असीमानन्द को आपश्री प्रकट अनुभव कर रहे हैं, देखिये, आपके मुख-पंकज श्री का पराग पीने के लिये, अयोध्यावासियों की मधुप श्रेणियों का बाहुल्य मार्गावरोध-सा कर रहा है। हमारे पिताश्री व माताश्री

जनों की उत्सुकता तो उन्हें अधीरता के आसन में स्थित किये होगी ?''
इस प्रकार श्री रघुनन्दन राम, अपने श्याल से कहकर कण्ठावरोध के कारण आगे कुछ न कह सके। श्यामसुन्दर वैदेही-वल्लभ का विग्रह वास्तव में प्रेम ही प्रेम से संप्रविनिर्मित है, अपने प्रति अत्यधिक उनका अनुराग सीताग्रज को विस्मृति की खाई में गिराना ही चाहता था किन्तु सामाजिक-संकोच ने समय में आकर बचा लिया, पुनः धैर्य के सहारे गद्गद् वाणी में राम के श्याल ने अपने भाम से कहा--''मेरे प्राणों के प्राण राम ! नीच से नीच अपने जनों को आदर देना आपश्री का परम औदार्य है, जो आपके स्वभाव से अभिन्न हैं, साथ ही अपने जन पर आपका अत्यधिक अनुराग अलौकिक है, जिसे प्राप्त कर आपके जन अनन्य प्रयोजन वाले सहज ही हो जाते हैं, वे आपके अतिरिक्त अन्य स्वार्थ-परमार्थ की संज्ञा ही भूल जाते हैं। अहो ! नेत्रवन्तों के नेत्रों का चरमफल जिसका परम सुखावह दर्शन है, जिसे प्राप्तकर ही सबके लोचन शीतलता के लाभ की अनुभूति करते हैं, आश्चर्य ! आश्चर्य !! वे वैदेहीवल्लभ, वैदेही-बन्धु को नेत्र-विषय बनाकर लोचन का लाभ मानते हैं और विरह-व्याधि से पीड़ित आँखों को दर्शन की प्रिय औषधि डालकर ठंडा करते हैं। क्यों न हो, राम का स्वभाव राम के अनुकूल है, जो अन्य सभी देवी-देवताओं के लिये अति दुर्लभ ही नहीं अपितु अप्राप्य है। अहो ! जो आनन्द का अम्भोधि अपने सीकरांश से अनन्त ब्रह्माण्डों के अनन्तानन्त जीवों को एक साथ आनन्द की आत्यान्तिक अनुभूति कराने में सहज समर्थ है, वह आनन्द-सिन्धु-स्वरूप- राम ! अपने में एक अल्प प्रवाह रूप एक मैथिल को मिलते देख, आनन्द का अनुभव कर भाव-विभोर हो जाय, आश्चर्य ! महा आश्चर्य !! यह सब जनकात्मजा जू के कृपा-वैभव का चमत्कार है। अहो ! जिस अयोध्या को प्राप्त करके ही अखिल जीव सुखी होते हैं, शान्ति का अनुभव करते हैं, उस साकेत के निवासी निमिकुल के एक बालक का अनुभव कर सुख के सिन्धु में निमग्न हो जाय कितने आश्चर्य का विषय है अतएव इसमें भानुकुल-कमल दिवाकर अपने भाम राम की अकारण कृपा ही मात्र कारण है और कुछ नहीं। राम ! यह सीताग्रज आपश्री को सर्वभावेन वैदेही के वधू काल में समर्पित हो चुका है। आपका यह सहज शेष, भोग्य व रक्ष्य है। आपश्री इसके उपभोग प्रक्रिया के प्रकार में स्वतन्त्र हैं क्योंकि भोग्य, भोक्ता के इच्छानुकूल होता है, आप चाहे इसे अपने से बड़ा बनाकर उपभोग करें चाहे छोटा बनाकर, चाहे जूतियों के स्थान में रखें, चाहे मुकुट के स्थान पर, इसकी मात्र इतनी इच्छा है कि आपका सहज सम्बन्ध अपनी अकार त्रय प्रधान

वस्तु से बना रहे—सुनते ही राम ने अपने हृदय का हार अपने श्याल को बनाकर कहा कि आपका स्थान मेरे हृदय और नेत्र में है, इनको शीतल करते रहना ही आपकी, अपने राम की सेवा है और यही मेरी भोग्यानुभूति है।

इस प्रकार परस्पर के वार्तालाप से एक-दूसरे को सुखी कर-करके गजारोही युगल-मूर्तियाँ समाज की शोभा परिर्वधित करती हुई अयोध्याभिमुख जा रही थीं, पंचध्वनि एवं अवनि और आकाश से की हुई पुष्प-वर्षा से समाज आनन्द में अधिकाधिक निमग्न हो रहा था। पुर में प्रवेश करते ही समुद्र में ज्वार-भाटा जैसे आनन्द में और परिवृद्धि-सी हो गई, नगर की सजावट मुनियों के मरे मन को पुनर्जीवित-सी कर रही थी, घर-घर मणियों के चौके, प्रदीप्त-कनक-कलश, बन्दनवार, पताका, सफल कदली स्तम्भ तथा कृत्रिम सूर्य-चन्द्र के प्रकाश शोभा की नायिका को सजा रहे थे, अतिरिक्त अग्नि-क्रीडनक और अटारियों में स्थित विद्युत वर्णा नारियों का दर्शन एवं उनके द्वारा की हुई पुष्प-वृष्टि और गगनगामी विमानों में स्थित देव-देवियों द्वारा पुष्प-वर्षा, जय ध्वनि, भूमि के पंचध्वनि से अपना स्वर मिलाकर अधिक-अधिक आनन्द की समुत्पत्ति कर रही थी। इस प्रकार भाम राम अपने श्याल के अवध आने पर उत्सवानन्द की परिवृद्धि करके स्वयं आनन्द के सिन्धु में गोता लगा रहे थे।

श्री लक्ष्मीनिधि अपनी अनुजा को लेने अवध जाकर जिस-जिस प्रकार जानकीवल्लभ जू से सम्मानित हुये, उस-उस प्रकार को अपनी वल्लभा से सप्रेम वर्णन करके प्रेम चिह्नों से चिह्नित हो गये। सिद्धि कुंअरि भी प्रीति-पारखी अपने ननदोई के अनुराग को अपने स्वजनों के प्रति अत्यधिक जानकर प्रेम विभोर हो गईं, पुनः प्रकृतिस्थ होकर पति मुख से और-और सुनने के लिये करबद्ध स्थित हो गई।

× × ×

११

अपने चरण प्रान्त में पड़े मिथिलेश कुमार को चक्रवर्ती अयोध्याधिपति ने बरबस उठाकर हृदय से लगा लिया और सीताग्रज को देखने के इच्छुक अपने अतृप्त नेत्रों को संतृप्ति प्रदान की पुनः राम के श्याल को अपने अंक में ले लिया और उनके आँखों से प्रवाहित अजस्र अश्रुधारा को प्रोक्षणी से प्रोक्षणकर स्वयं साश्रु उन्हें राम जैसा अपना लाड़-प्यार प्रदान किया,

तदनन्तर सुनैनानन्दवर्धन सप्रेम जननी-जनक का प्रणाम निवेदन कर मिथिला की विरह-वेदना-विषयक कथा सुनाई तथा समस्त अयोध्यावासियों के दर्शन की कामना मिथिलावासियों के हृदय में तीव्र त्वरा के साथ समुत्पन्न है, उसे सफलीभूत बनाने के लिए हमारे श्रीमान् पिता जी की प्रार्थना नतमस्तक आपश्री के चरणों में सादर समर्पित है, मन्द-मन्द मुसकाते हुये सीता के श्वसुर ने बिना वाक्-विसर्ग के स्वीकृति-सी प्रदान कर दी।

अहो ! चक्रवर्ती का लाड़-प्यार राम के श्याल को रामभद्र के समान असीम और अप्रतिम प्राप्त हुआ। अपनी पुत्र-वधू के बन्धु को अपने अंक से उतारने की इच्छा कौशल-नरेश के मन में नहीं हो रही थी यद्यपि वैदेही-बन्धु का गोद से उतरने का बार-बार प्रयास गतिशील था, अपने अंकस्थ कुमार का शिर सूँघ-सूँघ कर, अपने अमोघ आशीर्वादों से उसे राम का अभिन्न आत्म-सखा कहलाने योग्य बना दिया पुनः अपने प्रिय को गोद में लिये हुये वे बोले, "वत्स राम ! जैसे तुम अपने कण्ठ में कौस्तुभ मणि सदा धारण किये रहते हो, वैसे ही धारण करने के लिए एक अनमोल रत्न-हार जो सम्पूर्णतया श्री का कोष है, तुम्हें समर्पित करता हूँ, इसे ग्रहण करो और इस अलङ्कार से अलंकृत होकर, हम सब समाज को आनन्दित करो।" कहकर चक्रवर्ती नरेश ने सीताग्रज को, सीताकान्त के पाणि-पंकजों में समर्पित कर दिया, समर्पण की बेला में श्याल, भाम तथा चक्रवर्ती जी सहित उभय समाज के नेत्र साश्रु हो गये, सन्नाटा छा गया, अर्थ की प्रत्यक्षता अभी यवनिका के अन्दर थी, लोग कुछ समझ न पाये थे, अतः प्रत्यक्ष के दर्शन का विलम्ब सबको असहिष्णुता के आसन में आसीन किये था।

जन-मन-रंजन राम जो पितृ-आज्ञा को ही धर्म का सारसर्वस्व समझते हैं, पिता-वचनों का अभिप्राय पूर्णतः समझ गये थे यद्यपि गुरुजनों के बीच सहज संकोचशील राम को यह कार्य संकोच के सिन्धु में मग्न करने वाला था तथापि पितृ-आज्ञा को सर्वस्व समझकर संकोच के समुद्र को शोषण करने में उस समय रामभद्र अगस्त्य हो गये। पिताश्री की आज्ञा सदा सहर्ष शिरोधार्य है, आपश्री के दिये हुये हृदयहार को सदा-सदा हृदय में धारण किये रहूँगा, जब तक हृदय रहेगा तब तक हृदय से यह हार पृथक न होगा।" कहकर चक्रवर्ती कुमार मिथिलेश कुमार को हृदय में लपटा लिया जिससे आनन्द-सिन्धु, आनन्द में निमग्न हो गया जैसे रत्नाकर और महोदधि नाम के दो समुद्र परस्पर मिलकर एक प्रतीत होने लगते हैं, वैसे दोनों नृपति

कुमार अगाध प्रेम के जल से भरे हुये परस्पर मिलकर एक हो गये, कुछ चेतनायुक्त होने पर, श्याल-भाम दोनों एक सिंहासन में बैठ गये और एक दूसरे के अंशों में भुजा दिये हुए प्रेम का प्रकाश बिखेरने लगे।

श्याम-गौर वपुष की अमानुषीय दिव्य झाँकी निहारकर चक्रवर्ती जी (समेत सारा समाज निहाल हो गया। मिथिला और अवध के दो प्रेम के धागे एक हो गये, चक्रवर्ती जी) का जोड़ा हुआ श्याल-भाम का सम्बन्ध अविच्छेद हो गया। यह देख-देखकर सब जय-जयकार की ध्वनि में धूम मचाकर पुष्प-वर्षा (करने लगे, नगाड़े बजने लगे, दोनों की प्रीति का प्रमाणी-करण करने) के लिये आकाश में दुंदुभियों का शब्द सुनाई देने लगा। पुष्प-माल-इत्र-रंग-गुलाल की वर्षा के साथ युगल कुमारों का जयनाद सबके श्रवणों का विषय बना, आनन्द ! आनन्द !! आनन्द दसों दिशाओं में आनन्द भर गया। एक मुहूर्त के लिये उस चमत्कारपूर्ण दृश्य ने दर्शकों का स्थानान्तर करके किस दिव्य देश में स्थापित कर दिया था जो सर्वविधि मनसागोचर था।

कभी दोनों राम रूप में (दो राम जैसे) दृष्टिगोचर होते, कभी दोनों मिथिलेश कुमार के ही स्वरूप में सभी के नयनों के विषय बनते, कभी राम लक्ष्मीनिधि के रूप में, कभी जनक-सुवन राम के रूप में बैठै हुये नयन पथ के पथिक बनते। बुद्धि-विशारद दीर्घ-दर्शी अनुमान करते कि वास्तव में ये दोनों एक ही हैं, यही कारण है दोनों में अभेद की प्रतीति हो रही है। इन दोनों कुमारों का प्रेम अनिर्वचनीय, अगाध और अगम्य है। श्री चक्रवर्ती जी की इच्छा का आकार,, प्रेम का साकार स्वरूप धारण करके, समाज के नयनों का उत्सव बना हुआ है। हम सबके भाग्य का उत्कर्ष देवताओं से भी स्पृहणीय है। मुहूर्तोपरान्त उक्त दृश्य का अदर्शन हो गया। दोनों कुमार आसन से उठकर श्रीमान् कौशल नरेश के चरणों का सप्रेम अभिवन्दन करने लगे। महाराज श्री ने दोनों को उठाकर अपने गोद में बैठा लिया और लगे शिर सूँघ-सूँघ कर दोनों का प्यार करने। चक्रवर्ती जी के भाग्य-वैभव की भूरि-भूरि प्रशंसा सभी समवेत स्वर से करने लगे, पुनः महाराज श्री ने मिथिलेश कुमार को अन्तःपुर कौशिल्यादि महारानियों के पास पहुँचाने के लिये प्राण प्रिय रामभद्र से कहा।

इस प्रकार श्री चक्रवर्ती जी महाराज का अपने प्रति अनुराग और राम के समान उनसे लाड़-प्यार पाने की वार्ता, लक्ष्मीनिधि ने अपनी प्राण-वल्लभा सिद्धि कुँअरिजी से यथावत कह सुनाई, श्रवण करके वे आनन्दा-

तिरेक की स्थिति का आलिङ्गन करने लगीं, पुनः धैर्य धारण कर आगे की कथा सुनने के लिये समातुर करबद्ध हो गईं।

१२

जिसे अपने नेत्रों का विषय बनाने के लिये अधीरता पूर्ण अकुलाहट सदैव वरण किये रहती थी, उसे अपने चरण प्रान्त में पड़े हुए देखते ही माँ का वात्सल्य पूर्ण हृदय भर गया, आँखें डबडबा आईं, कम्पित वदना सिंहासन से उतरकर, लाल ! वत्स ! कुँअर ! कहती हुईं सीताग्रज को राम के समान अपने हृदय से छपका लिया माँ कौशिल्या ने, पुनः स्वप्रिय कुँअर को अंक में लेकर सिंहासनासीन हो गईं और अपने लाड़-प्यार-प्रक्रियाओं से स्वयं सुखी होकर अपने प्राणाधिक प्रिय अतिथि को आनन्द प्रदान करने लगीं। श्रीराम की माँ की गोद में स्थित राम के श्याल की दशा उस समय प्रेम-चिह्नों से परिपूर्ण थी, सिसक-सिसक कर रुदन करते देख माँ धीरज बँधा-बँधाकर अपने अंचल से अश्रु पोंछती थी वैदेही-बन्धु के, किन्तु स्वयं नयनों के नीर से कुमार के शिर का अभिषेक करती जाती थीं। राम अपने अनुजों सहित अपने-अपने आसनों में आसीन थे। अपनी माँ एवं आत्मसखा के पारस्परिक प्रेम के चित्र को नेत्रों का विषय बनाने से चित्र के चिह्न उनके ज्ञानेन्द्रियों को आत्मसात किये से प्रतीत होते थे। कुछ समय के पश्चात् धैर्य ने आकर प्रेमार्णव में डूबते हुये सबको उबार लिया। प्रेम-तट में बैठी हुई वात्सल्य मूर्ति माँ कौशिल्या ने वैदेही बन्धु की ठोढ़ी में हाथ फेर-कर उन्हें अपने मुख की ओर आँखें ले आने की चेष्टा के साथ बोलीं—"कहो, मेरे लाल ! तुम सर्वभावेन कुशल से रहे ? तुम्हारे जननी-जनक, परिजन-पुरजन के सहित आनन्द के आसन में आसीन हैं न ?"

'जिसके कुशलता की चिन्ता सर्व-समर्थ रघुवीर राम की माँ को है, उसकी कुशलता का अपहरण करने के लिए यमपुर अधीश्वर यमराज ब्रह्म लोकाधिपति जगत स्रष्टा सावित्री पति में भी नहीं ऐसी अपनी मान्यता है किन्तु श्यामसुन्दर-रघुनन्दन एवं विदेह-वंश-वैजयन्ती-वैदेही के वियोगाग्नि से विदेह पुरी की लतायें झुलसकर भूमि में लोट रही हैं, शुक-सारिकायें वैदेही-वैदेही कहकर नयनों से नीर बहाती हैं कि पुनः पुरजन, परिजन व (मेरे जननी-जनक की कथा ··)माँ ! एक मैं ही विदेह पुरी को चारों ओर से दग्ध करती हुई विरह-वह्नि की आँच से अपने को बचाने में समर्थ हो सका हूँ, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण आपके अंक में बैठकर, इसका कथा कहना

है कहते-कहते सीताग्रज का अचेत अम्बा की अङ्क में लुढ़कते देख पुनः सब लोग प्रेम के सात्विक भावों से भावित हो गये।

माँ ने स्वपुत्र के प्रिय श्याल को प्रयत्न से प्रकृतिस्थ कर उनका मुख धोया और आँचल से पोंछा पश्चात् मीठी-मीठी बात करके अपने हाथ से मधुरान्न पवाया, पान गंध के द्वारा सत्कारित किया। राम के श्याल ने अपने माता-पिता तथा अर्धाङ्गिनी का प्रणाम निवेदन कर साथ में लाई हुई सर्वाङ्गीण भेंट को समर्पित किया तत्पश्चात पुनः यशस्विनी वात्सल्य पूर्णा माँ ने सीताग्रज का लाड़-प्यार किया, गोद में लिये हुए उन्हें अपने सर्वविधि शुभाशीर्वादों से सर्वगुणों का संग्रहालय बना दिया जो राम के रिझाने के लिये पूर्ण उपयोगी था, तदुपरान्त ...... ।

"अपने प्राणों से प्यारे लाल, राम ! ये मेरे प्राण-प्रिय एवं नेत्र-प्रिय अतिथि हैं। तुम्हारी माँ की बुद्धि यह विचार नहीं कर पाती कि सीताग्रज का स्वागत किस वस्तु के द्वारा करूँ, लोक-परलोक से सम्बन्धित अपनी कहलाने वाली जो-जो वस्तुयें हैं, वे सब इनके आनुगुण्य नहीं है क्योंकि यदि ग्रहीता व भोक्ता के उपयोग के प्रतिकूल पदार्थ हुये तो वे दाता को विपरीत फल ही प्राप्ति कराने के कारण बनते हैं, यही ऊहा-पोह करते-करते मन श्रान्त हो गया है ...।" माँ कौशिल्या की उक्त वार्ता श्रवणकर, उनका लोना लाल माँ को परम प्रसन्न करने के लिये शीघ्र अपना सिंहासन छोड़कर अपने परम प्रिय श्याल के अङ्क को अपना आसन बनाकर बैठ गया।

"अरी मैया ! आपके प्राण-प्रिय अतिथि को आपके राम ने अपने को सर्वभावेन समर्पित कर दिया है।" राम के ऐसा कहने पर, "धन्य लाल ! धन्य ! अपनी माँ की सभी उलझनों को सुलझाने वाला तुम्हारे अतिरिक्त और कौन है ? इनके मनोनुकुल उपयोग में आने वाले मात्र तुम्हीं हो, यह मैं समझती हूँ, सीताग्रज को प्रसन्नता प्रदान करने वाली वस्तु मिल जाने से सीता समेत मेरा राम व सारा अवध—मिथिला समाज एवं सभी सुर, नर, मुनि समुदाय प्रसन्नता को प्राप्त होगा क्योंकि सुनयनानन्दवर्धन अपने इष्टदेव प्रसाद से कल्याण-गुण-गणों से युक्त सबके चित्ताकर्षक तथा आत्मा बने हुए हैं। राम ! मिथिलेश कुमार के परम प्राप्य मात्र तुम्हीं हो अन्यथा योगेश्वर याज्ञवल्क्य प्रसाद से निमिकुल किशोर का सहज वैराग्य शील मन, श्रुत और दृष्ट सभी लौकिक-पारलौकिक भोग-विभूतियों की ओर न जाने से इन्हें कोई अपेक्षाकृत आवश्यकता ही नहीं है। इनको सहज प्राप्त मिथिला का चमत्कार पूर्ण वैभव जो इन्द्र, वरुण, कुबेरादि के मन को अपनी ओर

आकर्षित करनेवाला है, कभी अपने में इनके मन को लिप्त न कर सका।" तदनन्तर मन्द मुसकान एवं चित्तापहारी चितवनि निक्षेप करके—"सखे ! मेरी पूज्य माता की ओर से उनका प्यारा लाल आपके आगमन के आनन्दोत्सव में आपको सर्वभावेन समर्पित है, इसका उपयोग आप श्री अपनी अधीनस्थ वस्तु की भाँति करने में सर्वथा स्वतन्त्र है।" रघुनन्दन राम ने कहा। कर्ण दबाकर—'माँ ! अपनी अनुजा के वधूकाल में मैं-मेरे का समर्पण भावी अधिकार के साथ सुर-नर-मुनि एवं अग्नि देव के समक्ष त्रिकरण संकल्प के द्वारा सीताकान्त के पाणि-पङ्कजों में कर दिया गया था, वह आपसे अविदित न होगा, जिन आचार्य-चरण एवं माता पिता का यह नियत धन है, उन सबका समर्थन वैदेही के बन्धु को प्राप्त हो गया है अतः अब आपके भवन की टहल करने के लिये स्वयं सेवा में उपस्थित है। सच्चे सेवक की सहज सम्पत्ति उसका स्वामी होता है। कौशल किशोर ! मैं आपका सहज शेष, भोग्य और रक्ष्य हूँ और आप मेरे शेषी, भोक्ता और रक्षक हैं अस्तु आप हमारे सर्वस्व हैं और स्वरूपानुकूल उपयोगी परम तत्व हैं, इसमें क्या कोई शंका है।" इस प्रकार राम के श्याल की बातें श्रवणकर ···'वत्स ! तुम सर्वभावेन राम में समर्पित हो ओर राम तुममें, अस्तु, दोनों श्याल भाम मिले हुए दो समुद्रों की भाँति अपने आनन्द की उत्ताल उर्मियों को उठा-उठाकर मिथिला-अवध की तटवर्ती भूमि को भिगो-भिगोकर हरी-भरी बनाये रहो, यही मेरे उर की उमंग है, यही मन का मनोरथ है. यही चित्त की चाह है और यही बुद्धि का विमर्श है एवं यही लोचनों का लोना लाभ है, यही कर्णों की कमनीय कामना है तथा आशीर्वादात्मक यही वाणी का विसर्ग है और यही देख-देखकर जीना आप दोनों की जननी का जीवन है।" इस प्रकार प्रेम भरी वाणी का विनियोग कर राम-माता ने श्याल—भाम का मंगलानुशासन किया, तत्पश्चात् सीताग्रज ने सभी माताओं के चरणों में शिर रखकर प्रणाम किया और सबका अभीष्ट आशीर्वाद प्राप्त कर-करके सभी सुर-नर-मुनियों का स्पृहणीय पात्र अपने को बना लिया। राम के समान राम की माता का लाड़-प्यार पाने वाला त्रिभुवन का स्नेहभाजन बन जाय, इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

इस प्रकार श्री लक्ष्मीनिधि जी से कही हुई, कृपा सिन्धु की जननी कौशिल्या अम्बा की कृपा प्राप्त करने की वार्ता सुनकर, स्नेहकातरा सिद्धि-कुँवरि जी धैर्य धारण कर, पति-मुख से कथा सुनने के लिये पुनः करबद्ध हो गईं।

× × ×

१३

कनक भवन के भव्यातिभव्य कमनीय कनक-कक्ष के मध्य महनीय मदन-मोहिनी कनक वेदिका में पड़े, कनक पर्यङ्क पर एकान्त सोये हुये को कौन जगा रहा है ? स्वप्न तो नहीं है, अरे ! स्वप्न कैसे ? अभी-अभी केवल आँखें झाँपकर सोने की मुद्रा में स्थित हुआ हूँ ! रघुनन्दन से एकान्त में जहाँ केवल मैं और मेरे राम हों, नहीं मिल पाया अतएव असंतोषित मन में अशान्ति का होना, उसका स्वभावगत धर्म है, अतः अशान्ति में विश्रान्ति का होना सर्वथा असंभव होने के कारण निद्रा देवी ने वरण ही नहीं किया और आशा भी असंभव की यवनिका में छिपी हुई है, किन्तु निन्द्रा न सही, सौन्दर्यसार श्यामसुन्दर की रूप-माधुरी के ध्यान योग की निद्रा तो वरण किये ही है । आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

"सखे ! सखे ! अरे ! भुवन मोहन भाम राम तो सो गये हैं अपने कक्ष में जाकर और इसे इस कक्ष में सोने के समुचित प्रबन्ध के साथ शयन करा-कर स्वयं गये हैं अतः वे तो नहीं होंगे किन्तु आवाज तो बड़ी मधुर है उनकी जैसी ही प्रतीति का विषय बन रही है । नहीं, नहीं वे नहीं हो सकते । उनके चिन्तन में निमग्न अन्तःकरण के कारण तदाकारिता से श्रवण में राम जैसे शब्द श्रवण सुखदाई सुनाई पड़ रहे हैं ।" सखे ! राम अपने आत्म-सखा से एकान्त में मिलने की आतुरता लेकर आया है, उठो ।"

"अच्छा, आँख खोल करवट बदल कर देखूँ तो । अहो ! मेरे प्राणा-धार ।" कहते ही उठने के पहले ही श्याल के भाम, अपने प्रिय श्याल के हृदय में लिपट गये तथा प्रेम और आनन्द की अनुभूति कर-कराके सखा के साथ समाधिस्थ हो गये, तत्पश्चात कुछ काल में श्याल भाम की एकान्तिक मिलनि दशा के ज्ञान से युक्त, पीठ पर बैठे हुए युगल कुमार हृदयाबद्ध होकर परस्पर के भुजपाश से बँध गये । दोनों का हृदय अपने-अपने सखा को अपने भीतर रखने के लिये प्रयत्नशील हो रहा था, सुधि-बुधि खोये हुए, प्रेम-पथ में पड़े उन पथिकों को सचेत करने के लिये वहाँ से उस पथ का कोई पथिक न निकला । नियति की इच्छा से कुछ काल में सचेष्ट होकर दोनों सखा परस्पर मुख की माधुरी का पान कर-करके तृप्त न होते और महा मधुर सुधारस से आपूरित कनकमयी व नीलममयी कलशी के मुख को स्वमुख में रखकर पूरी-की-पूरी पी जाना चाह रहे थे, किन्तु दोनों असफल रहे, कलशी ज्यों की त्यों भरी ही रही प्रत्युत स्वाद की परिवृद्धि के लोभ ने

दोनों के उदर को पृष्ठ से चिपका दिया पुनः अपने को भूले से केवल आँखों के द्वार से उसको पीने में प्रयत्नशील हो गये। चितवनि-मुसुकनि कला के विशारद दोनों एक दूसरे को आकृष्ट कर पुनः हृदय से हृदय लगाने को बाध्य कर देते, कभी दोनों के नेत्रों से स्नेह जल की धारा बह चलती, कभी परस्पर पाणि-पंकजों के पराग को पीते, कभी एक दूसरे की काय-सम्पत्ति को स्वयं की भोग्य वस्तु समझकर, भाव विभोर हो जाते, अनन्त का काय-वैभव, अनन्त को भोग्य रूपेण समर्पित हो जाने से और-और स्वारस्योत्पादक सिद्ध हो रहा था। यह दोनों की स्थिति भव-सुख से भिन्न सर्वथा अतीत थी, जहाँ संसारी सुख में समाविष्ट मनुष्यों का मन भी जाने में असमर्थ रहता है तथा निर्गुणानन्दी सन्यासी, केवलानन्दी योगी, उन्मनानन्दी उदासी और स्वर्गानन्दी इन्द्रादि देवताओं की भी मति-गति, उस स्थिति का स्पर्श नहीं कर सकती, प्रेमानन्द का अनुभव भगवान और उनके रसिक भक्तों के भाग्य का अनुपम सच्चिदानन्दात्मक चमत्कार पूर्ण वैभव है जो ब्रह्मानन्द से परे अति वैलक्षण्य को लिये हुए, शतगुण श्रेष्ठ है और आत्मा परमात्मा के योग से उत्पन्न प्रेम की अनिर्वचनीय अनन्त पुटी देकर उसे अचंचल चित्त के पात्र में भर विरह की वह्नि में अहंता-ममता और स्वार्थ-परमार्थ का ईंधन डाल कर सिद्ध किया हुआ अमृत को अमृत बनाने वाला आत्म रसायन है, जिसके स्पर्श मात्र से तन-रोग, मन-रोग, वचन-रोग अविलम्ब नष्ट हो जाते हैं तथा उस रस का एक कण पाते ही भगवान, भक्त और भक्त, भगवान हो जाता है, दोनों को अपने को पहचानना असाध्य हो जाता है, हरदी और चूने के मेल से जैसे एक तीसरा अनोखा रंग तैयार हो जाता है, हरदी में न पीलापन रहता और न चूने में सफेदी, उसी प्रकार प्रेमी-प्रेमास्पद (भक्त-भगवान) एक अनोखे प्रेमाद्वैत, रसाद्वैत के रूप में परिणत हो जाते हैं।

शयन के समय का अतिक्रमण करके विलम्बित समय के पश्चात् दोनों श्याल-भाम अर्ध-प्रकृतिस्थ दशा का दर्शन करके यह समझ पाये कि हम दोनों एक पर्यंक पर बैठे हुये, प्रेम की स्थितियों का स्पर्श कर रहे हैं। दोनों एक दूसरे को जाग्रत स्थिति के सदृश हृदय लगाकर स्पर्श जनित सुखानुभूति कर रहे हैं, पुनः कुछ काल में परस्पर मुखावलोकन की मुद्रा में स्थित पाणि-पंकज को पकड़े हुए प्रेमालाप करने लगे—

"क्यों ? आपने अधीरता की वेदी में बैठाकर अपने राम को, क्या पाया ?"

"विरह की वह्नि में झुलसते हुए रोज जीना और मरना पाया।"

'तो शीघ्रातिशीघ्र अयोध्या आने के लिये कहकर क्यों नहीं आये ?''

''वैदेही को शीघ्र मिथिला ले जाने के लिये उचित मुहूर्त की प्राप्ति न होने से गुरुजनों की आज्ञा की अप्राप्ति ही कारण थी, सखे ! मिलने की त्वरा उच्च स्थिति को प्राप्त होकर भी, अपने प्राण-प्रिय भगिनी भाम से वियोगित बने रहने के अतिरिक्त, सर्वथा परतन्त्र रहने वाले वैदेही-बन्धु के लिये उपाय ही क्या था।''

''अच्छा ! हमारी सरहज श्रीधर कुमारी जी की कुशलता सुनाकर यह बताइये कि वे अपने राम का कभी-कभी स्मरण करती थीं कि नहीं ?'' ....कहते-कहते रघुनन्दन की आँखों के कोष से झर-झर अश्रु के मोती गिरने लगे। साश्रु भाम के अश्रु पोंछते हुए, हृदय में लेकर प्यार से गद्गद् वाणी में.........!

''आपकी श्याल-वधू के ननँद-ननदोई कभी मिथिला पधारकर सिद्धि-सदन के प्राणाधिक प्रिय अतिथि बनेगें और युगल सेवा-सौभाग्य की साकल्य सम्प्राप्ति पुनः सुरपुर सीमन्तिनियों को श्रीधर कुमारी के भाग्योत्कर्ष की प्रशंसा करने को बाध्य करेगी। बस ! लाल-लली के कैंकर्य-लाभ के लोभ स्वरूप-जल के छीटों से वैदेही के भाभी के हृदय में धधकती विषम वियोग की अग्नि, उसे भस्म नहीं कर पाती। कैंकर्य के लोभ से राम की सरहज का जीना, भाम के श्याल के जीवन को सुरक्षित रखने के लिये भी सिद्ध हुआ है, स्वयं संतप्त होती हुई श्रीधर कुमारी ने आपश्री की कथा-सुधा पिलाकर राम के श्याल के जले-भुने शरीर को भस्मीभूत होने से सदा बचाया है।'' आत्म-सखा-मुख से सिद्धि-प्रेम की सिद्ध कथा श्रवणकर ....''हा ! कुंवरवल्लभे !'' कहकर साश्रु नेत्र विस्मृति से श्याल के अङ्क में लुढ़क जाते हैं, पुनः चेष्टित राम ने कहा ...... -''धन्य हैं प्रेम-विग्रहा राम की श्याल बधू को, जो राम के स्मृति का विषय बनकर, उसके चित्त पटल पर अपने चित्र को अंकित कर दी हैं, इतना ही नहीं अपितु वहाँ की वासिनी बनकर वहाँ की वसुधा का नामान्तरण अपने नाम करा लिया है, अब तो वहाँ अपना निर्वाह होना भी नेत्रों में नहीं दीखता। हाँ ! आपकी अर्द्धाङ्गिनी होने से आपका अन्यत्र जाना अवश्य असंभव है, अस्तु, आप दोनों का आवास राम के चित्त-भवन पर सहज संभव है। परमप्रिय अपने आत्मा राम का सहजतया स्वयं का आवास-भवन उसके श्याल और श्याल-वधू के चित्त के धरातल पर विशाल रूप से बना हुआ है और वे वहाँ के वेद-विदित आदिवासी के रूप में घोषित हो चुके हैं इसलिये उनका

आधिपत्य वहाँ पूर्णरूपेण है तथा उनके अप्रतिम स्वभाव की ऐसी महिमा है कि उन्हें अपने चित्त का चंचरीक बनाने के लिये, सभी प्राणि समुदाय अभिलाषा करते हैं, यही कारण है कि वे अपनी प्रेरणात्मक शक्ति के साथ जीव मात्र के हृदय-गुफा में निवास कर, उसके हित साधन में सतत् सजग-तया प्रयत्नशील बने रहते हैं, अतएव हृदय-बिहारी के निवास के लिये जब अनन्त हृदय अपने करके प्राप्त हैं, तब उनके चित्त की भूमि में कोई भूमि-हीन अशरण प्राणी को उनकी कृपा बसा दे तो सर्वपर, सर्वसमर्थ की क्या हानि होती है ? हाँ ! उस गरीब असहाय की सर्वथा बिगड़ी बन जायेगी और वह पेट भर भोजन करके हृष्ट-पुष्ट हो जायगा, जिससे अपने सेव्य की सर्वविधि सेवा करने में परम कुशलता प्राप्तकर सेव्य का प्रियपात्र बनने की योग्यता उसे वरण कर सकेगी।

अभी से नहीं अपितु राम के श्याल अनादिकाल से अपने भाम के हृदय हैं और राम अपने श्याल का हृदय है। राम सर्वभावेन अपने श्याल का है और श्याल अपने राम का। अहो ! यह कैसा अद्‌भुत अद्वैत है, जहाँ न द्वैत है न अद्वैत ही है और न द्वैताद्वैत ही है तथा न शुद्धाद्वैत है न विशिष्टाद्वैत है एवं न अचिन्त्य भेदाभेद ही है।"

"तो क्या है प्राणी के प्राण ?"

"यह है रसाद्वैत, रसरूपिण ! जैसे शुद्ध गो-दुग्ध है, उसे खूब पकाया गया पुनः उसमें अधिक माधुर्य परिवृद्धि के लिये मीठा मिला खोया किञ्चित छोड़कर पाने वाले का अनुभवानन्द विलक्षण होता है जो उक्त दर्शनों (सिद्धान्तों) में नहीं है, अब अन्वेषण करें कि इसमें द्वैतादि सभी दर्शनों का अभाव है या नहीं, यदि अभाव है तो यह रसाद्वैत सर्व विलक्षण स्वयं सिद्ध होगा। ज्ञानियों के मुकुटमणि मिथिलाधिराज के पुत्र एवं श्रीयोगि-वर्यब्रह्मविद वरिष्ठ महर्षि याज्ञवल्क्य जी के शिष्य-शिरोमणि को यह सब समझने में विलम्ब न होगा इसलिये यहाँ रस व्याख्या एवं दर्शन व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। यहाँ तो मात्र रस पीना ही प्यासे को अभीष्ट है।" मुस्कान युक्त तिरछी तकनि से तककर राम ने रसपात्र को अपने आनन का विषय बनाते हुये कहा।

"रसिक शिरोमणे ! श्याल-भाम की पेय पीने की परस्पर प्रक्रिया जब एक सादृश्यता को लिये हुये दृष्टिपथ का विषय बन रही है, तब दोनों में किसे रस कहा जाय, किसको रसिक ? संसार में भोक्ता और भोग्य का परस्पर अन्यत्व सहज सिद्ध होता है। प्रत्यक्ष में प्रमाण की क्या आव-श्यकता ?" श्याल ने भाम के चन्द्रानन की सुधा की घूंट पीते हुये कहा।

"अहो ! एक ही किसी अनिर्वचनीय देव ने, रस-रसिक की ज्योति जगाते तथा उभय प्रकार की रसानुभूति करने के लिये, अपने को द्विधा रूप में परिवर्तित कर लिया है अतः हम अनादि युगल सखाओं को अभिन्न हृदय, अभिन्न अन्तःकरण और अभिन्न आत्मा का अनुसंधान करके परस्पर प्रीति को परिवर्धित करना एवं रहनी-कहनी और करणी द्वारा एक-दूसरे के मुखाम्भोज को विकसित बनाये रहना ही, हमारा करणीय विशुद्ध व्यापार होना चाहिए। आपको छोड़कर अन्य को न देखने, न सुनने और न जानने की सहज वृत्ति आपके भाम की हो गई है, ज्ञानेन्द्रियों को आपके अनुभव के अतिरिक्त अन्यानुभूति के लिये अवकाश ही नहीं है। अपनी सासु सुनैना जी को बिदाई काल में यह वचन दिया था मैंने कि आपकी युगल सन्तानें मेरे दो स्रोत हैं, दो नेत्र हैं, दो घ्राण हैं, दो प्राण हैं, दो दिल हैं, दो कर हैं, दो पाद हैं और अन्न-जल तथा वायु जाने की दो नलिकायें हैं किंबहुना आपके जमाई की आत्मा है, अस्तु, दोनों अभेद दृष्टि से मुझे परम प्यारी हैं, भविष्य में रहेंगी। आपका राम एक बार मुख से निकली हुई वार्ता का पुनः संशोधन नहीं करता अर्थात् उसमें उलट-फेर नहीं करता इसलिये वैदेही के बन्धु को अपने भाम के योग्यानुभव में आने के लिये एवं स्वयं वैदेही-वल्लभ का अनुभव करने के लिये सद्य-प्रफुल्ल-कमल के सदृश्य विकसित मुख श्री को, सबके नेत्रों का विषय बनाये रहना चाहिये। हमारे माता-पिता और आचार्य श्री का अमोघ आशीर्वाद पाकर क्या कुछ पाना शेष रह गया ?" ऐसा कहकर राम ने वैदेही-बन्धु को हृदय में लेकर, विविध स्नेह प्रक्रियाओं के साथ उन्हें अपने हृदय को दे दिया।

"अपने श्याल के सर्वस्व ! आपके विचार ही प्रथम आपमें उत्पन्न होकर पश्चात् आपके श्याल के अन्तःकरण में उदित होते हैं, जिस भाव से आप जीव को वरण करते हैं, उसी भाव से भावित होकर आत्मा आपके अनुभव की योग्यता प्राप्त करता है इसलिये इसके अन्तःकरण में 'नान्यत-पश्यामि', 'नान्यत श्रृणोमि' और 'नान्यत विजानामि' की सत्य वृत्ति की ज्योति एक रस दृढ़ निश्चय के साथ सदा अन्तर और बाह्य प्रदेश को प्रकाशित किये रहती है। आपश्री के ज्ञानेन्द्रियों का आहार है आपका श्याल, अस्तु आपकी सर्वविधि भोग्य वस्तु आपश्री की नियत रूपेण है, इसका अनुभव स्वच्छन्द रूप से इच्छानुकूल करते रहें, यही आपके श्याल का परम प्रयोजन है, जिसमें अन्य प्रयोजनों का न होना स्वतः सिद्ध है।" कहकर लक्ष्मी निधि जी अपने भाम को हृदय का हार बना कर प्रेमार्णव में तैरने लगे।

"सखे ! अब हम दोनों शयन कर जाँय, निशीथकाल के नीरव वातावरण में जब जगत सो रहा है, तब हम दोनों जागकर, योग-निद्रा से अनेक गुणा आनन्द की अनुभूति करने में निमग्न हैं, अब रात्रि की चतुर्थ बेला का आगमन होने ही वाला है, लोग जागेंगे; हम दोनों की जाग्रत स्थिति संकोच जनक न हो जाय इसलिये कम से कम सोने की मुद्रा में तो स्थित हो जाँय।" इस प्रकार भाम के कहने के अनन्तर…… ••• ‥ ।

'अपने सखा के आत्मा, राम ! अब आपश्री अपने शयनागार में पधारकर शयन करें, बहुत विलम्ब हो गया है जिससे आप श्री के मुख-कमल के विकास में कोई अवरोध न उत्पन्न हो।"

'अहो ! राम का शयनागार तो अपने आत्म-सखा का हृदय ही है, (कहते हुये हृदय से लगाकर) अतएव अब मैं कहाँ जाऊँ ? अपनी शयन-शय्या का सौहार्द त्यागकर ? अब भाम, श्याल को छोड़कर आपके भगाने से भगने वाला नहीं है।"………

"……… तो श्याल अपने हृदय-शय्या से भाम को कब भगाता है। अभी तो व्यवहारिक बाहरी शय्या में सोने के लिये श्याल की वाणी, भाम के श्रवण का विषय बनी है।"

"…… तो मैं आपके साथ व्यवहारिक शय्या में ही सोने को कह रहा हूँ न ! अब आप अपने प्यारे राम के हैं तो आपकी भीतरी व बाहरी शय्या में भी राम का ही अधिकार है।" कहते हुये भाम-श्याल दोनों तिरसठ की मुद्रा में एक साथ सो गये किन्तु नींद का नाम नहीं।

"प्यारे ! आत्म सखे ! आपका गाढ़ालिंगन आदि प्रेम प्रक्रियाओं को करके केवल मुझे ही परमानन्द की अनुभूति होती हो सो नहीं, आपश्री जब स्नेह जनित क्रिया से मेरे शरीर का स्पर्श, विविध प्रकारों से मुझ शरीरी की प्रसन्नता के लिये करते हैं, तो उस दुलार, लाड़-प्यार से मुझे ही सुख होता है, इस प्रकार से आपका राम, सर्वभोक्ता सहज सिद्ध हो जाता है, अस्तु, आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!" राम ने कहा।

"जो आनन्दमय है, उसके आनन्द को क्या कहना ! जो सरोवर लबालब भरा हुआ लहरा रहा है; उसकी क्या प्रशंसा ! वह तो स्वयं सिद्ध है, भाग्यानन्द विषयक प्रशंसा करने योग्य पात्र, वह सूखा सरोवर है, जिसे भरे सरोवर ने अपने में मिलाकर जल से भर ही नहीं दिया अपितु अपने से अभिन्न कर दिया है अतः आनन्द ! आनन्द …… महाआनन्द।" कहकर सीताग्रज, सीताकान्त के साथ एक शय्या में सो गये।

इस प्रकार आयोध्या में भाम-श्याल की शयन झाँकी का वर्णन उपक्रम से लेकर. उपसंहार तक लक्ष्मीनिधि ने अपनी प्राणवल्लभा से किया। दोनों ने तद्‌वार्ता के आनन्द में निमग्न होकर पुनः धैर्य का अवलम्बन लिया। सिद्धि जी पुनः राम-कथा श्रवण करने के लिये कर बद्ध हो गईं।

× × ×

१४

अपने अंक में आसीन अनुजा के भैया का भाग्यार्क, गगनगामी सूर्य की द्वि-प्रहर-यात्रा के समान प्रभान्वित हो रहा है। अहो! अपने स्पर्श से लोहे को सोना बनाने वाले पारस के समान भगिनि के सम्बन्ध ने भ्राता को राई से सुमेरु बना दिया, तभी तो सीताग्रज के भाग्य वैभव को अपनी दृष्टि का विषय बनाकर, बड़े-बड़े सुर, नर, मुनियों का समाज बिना प्रशंसा किये विश्राम नहीं लेता, जब ब्रह्मा-विष्णु-महेश को सीता जैसी भगिनि का भ्रातृत्व-पद प्राप्त करने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ तो अन्य देवताओं की कथा ही क्या कही जाय। श्री चक्रवर्ती जी महाराज, आचार्य प्रवर श्री वशिष्ठ जी एवं श्री विश्वामित्र जी महाराज का मन्त्रिमण्डल सहित परिजन-पुरजन समाज का एवं माँ श्री अरुन्धती जी, श्री कौशिल्या अम्बा, श्री सुमित्रा अम्बा, श्री कैकयी अम्बा के सहित सम्पूर्ण अन्तःपुर का तथा सखाओं सहित श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, अपने चारों भामों का आत्याधिक स्नेह प्राप्त करके तदनुकूल सबसे सम्मानित होना, यह सब अपनी अनुजा के भ्रातृ-सम्बन्ध से ही साकेत में मिथिलेश कुमार को सुलभ हुआ है अन्यथा देव-दुर्लभ सब के हृदय में स्थान पाना सर्व विधि-अकिंचन को सर्वथा असंभव था।" कहते-कहते अश्रु-विलोचन सीताग्रज बाह्य स्मृति शून्य हो गये। तदनन्तर प्रकृतिस्थ होने पर ... ... "भैया, ओ भैया! बतलाने की कृपा करें, अभी आपश्री की मुख-मुद्रा यह बता रही थी कि आपश्री किसी आनन्दमय दृश्य का दर्शन कर रहे हैं। आपके मुख के अलौकिक तेज और प्रसन्नता से यह सिद्ध हो रहा है कि आप यहाँ न थे, किसी दिव्य दर्शन में लीन थे।"

"अपनी सीता का अग्रज अभी अपने चित्त पटल पर उदित एक दृश्य का दर्शन कर रहा था, अनुजे!"

"वह दृश्य कैसा था भैया?"

"अहो! आश्चर्य! महाश्चर्य!! इन चर्म-चक्षुओं द्वारा उस महातेज राशि को कभी देखा नहीं जा सकता। साकेत पीठ में प्रतिष्ठित अपने भगिनि-

भाम को देखा, जिनसे तेज निकल-निकलकर अनेक सूर्यों को प्रकट कर रहा था। वहाँ के भव्य-भवन, वेदिका, सिंहासन भी कोटि सूर्य-समप्रभ थे, अनन्तानन्द दिव्य-दिव्य देवों से सेव्यमान वह मिथुन जोड़ी अपनी ओर आकृष्ट सी होती हुई, आसन से उठकर आ रही थी, मैं तो केवल दर्शना-ह्लाद से ही अपने को सम्हालने में असमर्थ हो रहा था। इतने ही में वह युगल मूर्ति मेरे नेत्र मार्ग से पधार कर, हृदय के सिंहासन में बैठ गई, पुनः भाम ने श्याल का पाणि पकड़कर, सिंहासनासीन कर लिया और भगिनि-भाम दोनों नेत्रों के तारे द्रष्टा के ही गोद में बैठकर दोनों ओर से लिपट गये, उस आनन्द का अनुभव वाक् और मन से सर्वथा परे था। मूर्तित्रय सुषुम्ना इड़ा और पिंगला नाड़ी के समान अथवा यज्ञोपवीत के तीन सूत्रों के समान लिपटे थे, तीनों आनन्द की निद्रा में स्थित हो गये। कुछ काल पश्चात् स्वरूपस्थ राम ने कहा, "सखे ! हम तीनों एक ही हैं, लीला-रस के आस्वादन करने के लिये एक के तीन दृष्टिगोचर हो रहे हैं। देखो हमारी ओर।"

देखा तो, दोनों भ्रात-भगिनि को राम के हृदयस्थ-आसन में तीनों मूर्ति एक थाले में जमें, तीन रसाल (आम्र वृक्षों) वृक्षों के तने की भाँति लिपटे हुए शोभा का वैशिष्ट्य और वैलक्षण्य प्रकट करते हुए दिखाई दिये, पुनः भाम ने अपने श्याल से कहा, "देखें आप अपनी अनुजा की ओर।"

ज्यों ही आपके भ्राता ने अपनी ललित लड़ैती किशोरी की ओर देखा, तो वहाँ भी उसी दृश्य का दर्शन हुआ जो अपने राम के स्वरूप में दृष्टि का विषय बना था पुनः राम ने सीताग्रज से कहा, "आप अपनी ओर अव-लोकन करें।"

देखने पर वैदेही के बन्धु ने अपने हृदय से अभिन्न अपने भाम-भगिनि को अपने में लिपटे हुए पाया पुनः विचार निमग्न होकर सीताग्रज खो गया और अब अपने को भगिनि-समाज के मध्य किशोरी को गोद लिये हुए देख रहा है, देखे हुए दृश्य का दर्शन क्या है, नहीं समझ पाया।

"भैया ! उस दृश्य का दर्शन, यही बुद्धि के शीशे पर पड़ रहा है कि हम तीनों सदा-सदा से वर्तमान सम्बन्ध के स्वरूप में स्थित हैं, भविष्य में भी रहेंगे; एक अद्वय तत्व ही तीन स्वरूपों में दृष्टिगोचर हो रहा है अर्थात् एक से तीन और तीन से एक होने की लीला सनातन से चली आ रही है, आगे भी चलती रहेगी।"

"अहो ! यह कल्पना कभी-कभी मन में उठकर अधीर बना देती थी कि यदि सीताग्रज बनने का सौभाग्य मेरे दोष से कभी न मिलेगा तो……" कहकर भ्राता को चेतनाहीन वियोगावस्था में विलीन हुए देख उपचारों द्वारा प्रकृतिस्थ करके कुँवर की अनुजा ने कहा—"भैया ! चिदाकाशोदित दृश्य सदा सत्य से संलिष्ट रहता है अतः परम प्रतीति के साथ भाई-बहिन दोनों शंका के सर्प से अपने को काटने का समय ही न आने दें। यही उचित है।"

किशोरी-कृपा का दर्शनकर अपने किशोरी का भैया निश्चिन्त हो गया, कृतकृत्य हो गया, उसने प्राप्तव्य को प्राप्त कर लिया, कहकर पुनः माधुर्य के प्रवाह में ऐश्वर्य की गठरी बह जाने से सीताग्रज ने सीता, उर्मिला, माण्डवी और श्रुतिकीर्ति का खूब दुलार-प्यार किया और अपने साथ लाई हुई भेंट को सखियों सहित सभी बहिनों को सादर समर्पित किया। आपका एवं अपने जननी-जनक, प्रजा-पुरवासियों का कुशल समाचार पहले ही सुना दिया था, सीता को तथापि मेरी अनुजा अपने मातृपुर के पशु-पक्षी-लता भूरुह की कुशलता बार-बार अपने भैया से पूछती और सुन-सुनकर प्रेम-विभोर हो जाती थीं कि पुनः अपनी भाभी व मैया-दाऊ की कथा श्रवण करके…… ।

इस प्रकार अपने प्राण-वल्लभ से अपनी ननदों की प्रेम-गाथा श्रवण-कर, सिद्धि जी प्रेम चिह्नों से चिह्नित आगे कथा श्रवण करने के लिए पुनः करबद्ध विनयावनत मुद्रा में स्थित हो गईं।

× × ×

१५

एक दिन आभूषित गयन्द की राजोचित सवारी किये हुए राम अपने श्याल के साथ सरयू तट-संस्थित प्रमोद बन बिहार करने हेतु जा रहे थे। बड़ी ही विचित्र मुनि-मन-मोहिनी शोभा समुत्पन्न हो रही थी। रामानुज-सीतानुज, नख-शिख वस्त्राभूषणों से भूषित, सर्वाङ्गीण साज से सुसज्जित अश्वों पर आरोहित थे, कुछ समाज सैनिकों का पदचारी भी था। चलने वालों की गति अपनी-अपनी व्यक्तित्वता को लिये हुए कर्ण प्रिय थी। हाथी के चलने की मस्स-मस्स ध्वनि, घोड़ों के चलने की टप्प-टप्प आवाज एवं पदचारियों के एक-दो, एक-दो का गति शब्द वाद्य-ध्वनि के स्वर में मिलाता हुआ, मन को आकर्षित कर रहा था। आनन्द लूटते हुए नगर निवासी नर-नारी जय-जय-

कार करके पुष्प-वर्षा कर रहे थे। आनन्दमय अवध लाल के अलभ्य लाभ के लोभी देवगण सुअवसर में कभी पीछे नहीं हुए वे भी विमानारोंही होकर पुष्प, इत्र, रोरी, लाजा आदि की वृष्टि करके सेवा सुख का आस्वादन कर रहे थे। अश्वारोही कुमारों की जय हो की ध्वनि अवनि और आकाश को एक कर रही थी।

इस प्रकार प्रमोद विपिन पहुँचकर, वहाँ के दिव्य प्राकृतिक दृश्यों का दर्शन करने लगे। युगल पुरियों के राजकुमार एक-दूसरे से वनश्री का वर्णन कर-करके विभोर से हो जाते थे, तदनन्तर एक विशाल कुंज के बाहर बने हुए ऊँचे चबूतरे पर, यथोचित आसानों में सब आसीन हो गये। "रामो-रमयतां वरः" श्याल के मन को प्रमोद बन में रमाकर अपने नाम के अर्थ को चरितार्थ कर रहे थे राम!

इतने में ही द्वादशाब्दकीया कुछ कन्यायें आयीं और निम्ननयना नत-मस्तका सभी प्रेम मूर्तियाँ पुष्पाञ्जलि समर्पण के साथ रसिकेश्वर राम को प्रणाम कर चली गयीं पश्चात् कुछ दूर जाकर अदृश्य हो गईं वन में। "श्यामसुन्दर रघुनन्दन! ये कौन थी देवियाँ जो आपश्री को प्रणाम कर तिरोहित हो गई हैं।" वैदेही-बन्धु ने पूँछा।"

"ये बन-देवियाँ हैं, निमिकुमार!"

"......तो इनके अन्तर्हित हो जाने का कारण क्या है? ये सब कोई बन विशेष में रहती हैं?"

"ये सब प्रमोद बन के उपवनों की अधिष्ठातृ देवियाँ हैं कुमार।"

"तो क्या अकेले-अकेले रहती हैं, रघुनन्दन?"

"नहीं, इनके साथ वन देव भी रहते हैं, जिनकी ये देवियाँ हैं।"

"हे चक्रवर्ती-नन्दन जू! प्रमोद वनान्तर्गत सभी बन आपश्री के पदार्पण करने योग्य हैं, आप स्वेच्छा पूर्वक वहाँ विहार करें।"

कहते हुए सपुष्पाञ्जली प्रणाम करके वन-देव, अवधेश कुमार के संकेत से अदृश्य हो गये।

"वन के देवता क्या यही हैं?"

"हाँ, यही हैं सुनैनानन्दन!"

"आज हमारे भाग्य से ही ये वन-देवी-वन देव आपके दर्शन के लिये पधारे थे, इन सबका दर्शन पाकर अपने आपको धन्य समझता हूँ।"

"ये सब आपके दर्शन करने के लिये ही आये थे, निमिकुल भूषण !"

"ये सब हमें क्या जाने रघुवंश विभूषण !"

'भला निमिकुल के मुकुट में लगा हुआ, सूर्य संकास हीरा त्रिभुवन से क्या अविदित रहेगा ? अहो ! लोकप्रिय मुख-मयंक का दर्शन कौन न चाहेगा ।"

'अवश्यमेव आपश्री के दासों का समादर सभी त्रिभुवनवासी किया करते हैं । उनकी ओर सभी नयनवन्त अपनी स्नेह भरी दृष्टि से ईक्षण क्रिया करते हैं । रामदासों की ओर वक्र-दृष्टि करने की सामर्थ्य जब किसी देवी-देव में नहीं है तो इतर प्राणियों में कैसे उसका संभव कहा जा सकता है, अस्तु, अयोध्या के सम्बन्ध में मिथिला का महत्व महनीय हो जाय और राम के रिझाने के लिये लोक उसका भक्त बन जाय, तो इसमें अयोध्या ही प्रशंसनीय है, मेरे प्यारे राम !

"लक्ष्मीपति यदि नारायण न हो, माया पति माधव न हों, प्रभा से प्रभाकर का सम्बन्ध न हो, चन्द्रिका से चन्द्रमा का सम्बन्ध न हो और ऊष्मा से अग्नि का सम्बन्ध न हो तो सर्वसाधारण की ही कोटि में गिने जायेंगे ये सब, उसी प्रकार अयोध्या का मिथिला से सम्बन्ध यदि न हो और आपके भाम का, आप श्याल से सम्बन्ध न हो तो बिना अन्तःपुर के राज-भवन के समान ये सब अप्रभ प्रतीत होंगे, निमिकुमार !"

"अपने से निम्न को भी आदर व सम्मान देना, बड़ों का सहज स्वभाव होता ही है, रघुनन्दन ! किं पुनः आपके स्वभाव की चर्चा क्योंकि वह तो असमोर्ध्व है ।"

......वार्ता करते ही चारों ओर दिव्य प्रकाश छा गया तदनन्तर सूर्य सदृश तेज से युक्त सिद्ध, ऋषि, महर्षि, देवर्षि, आकाश से उतरते हुए दिखाई दिये ।

"सखे ! देखो, यह परम तेजस्वी सिद्धों का समूह हम सबको अपने दर्शन से परमपूत बनाने के लिये, अपने हार्दानुग्रह की विवशता से, आज हमारे दृष्टि का विषय बन रहा है । आनन्द ! आनन्द !! राम ने कहा ।

"अयोध्या धाम में आ जाने और आपके सौहार्द से न जाने कितने अकथनीय आनन्द प्रदायक दृश्यों के दर्शन सहज सुलभ होंगे इसको ।" मिथि-लेश कुमार ने कहा ।

इतने ही में भूमि में उतरे हुए सिद्ध-गणों को पुष्पाञ्जली समर्पण कर, ससमाज युगल नृपति कुमारों ने सबको साष्टाङ्ग प्रणिपात किया ।

सिद्धों ने श्याल-भाम की जोड़ी को उठाकर साश्रु हृदय से लगाया और सिर सूँघकर, अपने अमोघ आशीर्वादों से कृतकृत्य किया तदनुसार रामानुज-सीतानुज सभी लोग सिद्धों की कृपा को पूर्णत प्राप्त किये। सामयिक आसन और पाद्यादि देकर, सभी सिद्धों का पूजन बड़ी विनम्रता से, सीताकान्त ने स्वयं अपने कर-कमलों से किया। नभ से जय-ध्वनि एवं पुष्प-वर्षा के साथ दुंदुभियाँ बजने लगीं, रघुनन्दन के अप्रतिम शील-स्वभाव का दर्शन करके, देव-समूहों द्वारा···

अहो! रघुकुल शिरोमणि राम! हम सब सिद्धों एवं ऋषियों का पूजन तो आपके दर्शनमात्र से हो गया था, श्री नारद जी ने कहा। किन्तु आप धर्म सेतु पालक मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, अस्तु, लोक प्रशिक्षण के लिये अपनी प्रभुता का विस्मरण करके, कितने आदर के साथ अपने गृह-सेवकों से मिलते हैं कि पुनः पितृ-गुरु-देव-ब्राह्मणों आदि के साथ आपके उदार व्यवहार की वार्ता।

"भगवन! आपके सेवक राम में जो कुछ आपको दीखता है, वह आप सबके आशीर्वाद का फल है और वह है आपकी सेवा के लिये। आप सबका दर्शन पाकर आज राम कृतार्थ हो गया। आप सब आप्त काम महापुरुष हैं। आपके सेवन से, सेवा करने वाले को कोई लौकिक पारलौकिक वस्तु अप्राप्त नहीं रहती तथापि दास के लिये कुछ सेवा करने की आज्ञा हो।" रघुनन्दन राम ने कहा।

राम! सृष्टि के आदि में ब्रह्मा को परम तत्व का ज्ञान जिसने दिया था, जो जगत जन्मादि के अभिन्नोपादान एवं निमित्त कारण स्वरूप हैं जो अन्वय और व्यतिरेक अवस्था में स्वयं सहज एक सत्तावान है, जिनकी सत्ता से माया कार्य भी सत्य-सा प्रतीत हो रहा है, वे मायातीत परब्रह्म परमात्मा पुरुषोत्तम भगवान आप ही हैं। अपनी योग माया का आश्रय लेकर कपट मानुष वेष से, जन-मन रंजनार्थ एवं धर्म संस्थापनार्थ मुनि-मन-मोहिनी लीला का विस्तार कर रहे हैं, जिसे लोग गा-गाकर भविष्य में भवसागर पार हो जायेंगे। आपश्री के धराधाम आते ही वेद-विरुद्ध आचरण करने वाले, दुष्टों के मन में आतंक और आपके अनुयायियों के हृदय में हर्ष छा गया है, कुछ काल में ही वह समय आने वाला है, जो आपश्री के द्वारा दुष्ट-दमनकारी तथा भक्त हितकारी सिद्ध होगा। दशरथनन्दन श्रीराम की जय हो, जय हो········सिद्धों के कहते ही पुष्प-माला रंग इत्यादि की वर्षा आकाश से होने लगी, दुंदुभियाँ बजने लगीं गंधर्वों के संगीत के साथ,

अप्सराओं का नवल नृत्य भी नूपुरों की झनकार के साथ रुक न सका। नारद जी वीणा के तारों पर, अपनी अँगुलियाँ फेरकर शार्ङ्गधन्वा भगवान राम का यशोगान करने लगे, साथ में आये सिद्धगण देवर्षि के स्वर में स्वर मिलाने में सौभाग्य समझने लगे। संगीत-सिन्धु की मीठी-मीठी भाव भरी लहरें, प्रमोद बन को आप्लावित करने लगीं। वन देवियों और वन देवों से न रहा गया, वे सब आकर ऋषि प्रवर की कीर्तन ध्वनि में ध्वनि मिलाकर नाचने गाने लगे। गगन में पुष्प-वर्षा के बाहुल्य, वाद्य-ध्वनि एवं नृत्य गान की प्रक्रिया के चमत्कारिक दृश्य से मिथिला और अवध समाज आश्चर्य चकित होते हुये, आनन्द में निमग्न हो गया, एक मुहूर्त के पश्चात् ब्रह्मपुत्र श्रीनारदजी ने कहा............

"राम ! आपके नाम रूप लीला और धाम के कीर्तन करने में सदा हम निरन्तर लगे रहें तथा हमारी अनुरक्ति आपमें दिनों-दिन परिवर्धित होती हुई, कभी इति को न प्राप्त हो। बस, यही हमारी सेवा है, उसे ही आप पूर्ण करें; इसके अतिरिक्त अन्य सभी प्रयोजनों का अभाव है, हृदय के अन्तराल में।"

"मुने ! आप सब सिद्धगण सभी सिद्धियों के प्रदाता हैं। आप सबके प्रसाद से असिद्ध भी सिद्ध हो जाते हैं। आप सबकी वाणी में सत्य का साक्षात् स्वरूप स्थित रहता है। आप अपने संकल्प से कल्पलत में पत्थर और पत्थर में कल्पलता की बेलि प्रकट कर सकते हैं। अघटित-घट, सुघट-विघटन की अमोघ शक्ति आप लोगों का साथ नहीं छोड़ती अतः अपने राम को आप जैसा चाहें बना सकते हैं, आपका अमोघ आशिर्वाद ही अपने राम को शक्ति व प्रेरणा देकर, आपकी सेवा कराने में समर्थशाली सिद्ध होगा अन्यथा यह दाशरथि क्षत्रिय कुमार ही तो है।" इस प्रकार नत-मस्तक सम्पुटाञ्जलि-रघुनन्दन राम ने कहा !

सब सिद्धगण...........'जय हो ! अप्रतिम रघुनन्दन के शील स्वभाव की'—समवेत स्वर में कहे। हम सब पा गये राम ! आपश्री की वाणीं में हमारे माँग की पूर्णता ही तो भरी थी, वचन रचना नव नागर की जय हो, जय हो।

अहो ! यहाँ आने पर आज हम लोगों को निमिकुल-भूषण रघुकुल-भूषण के दर्शन एक साथ हो रहे हैं, वह भी श्याल-भाम के सम्बन्ध से संगठित दो को एक और एक को दो रूप में। कहो दोनों जनक-जमाई और जनकात्मज ! स्मरण है न ? दोनों की पूर्वरागोदित विरह-व्यथा को शान्त करने तथा एक से दूसरे के चरित्र तथा पारस्परिक प्रेम की कथा सुना-सुना

कर प्रकृतिस्थ करने का उपाय बनकर मिथिला से अवध और अवध से मिथिला जाने की क्रिया, इस ब्रह्मपुत्र नारद के द्वारा कई बार हुई थी।

श्याल-भाम दोनों देवर्षि के चरणों में लिपटकर, उन्हें अश्रुओं से भिगोते हुये..........."देवर्षे! खूब स्मरण है, आगे भी आपके इस उपकार को हम न भूल सकेंगे। मझधार में डूबती नाव को आप ही किनारे लाते हैं। आपश्री के हार्द्रानुग्रह से मेरे आत्मसखा राम, मुझे भाम के रूप में प्राप्त हुये हैं अन्यथा आपका यह किंकर लक्ष्मीनिधि, फूटी कौड़ी का निधि भी न रहता। दास सदा-सदा आपका ऋणी गुलाम है, नत मस्तक है, इसके अतिरिक्त दास में अकिंचनता ही है।" लक्ष्मीनिधि ने कहा।

"अवश्यमेव विरह की तीव्र संवेगशाली सरिता में बहकर हम दोनों डूब जाते, यदि आपश्री की कृपा-नौका का अवलम्ब न होता।"

इस प्रकार श्याल-भाम की सविनय वाणी को सुनकर दोनों को देवर्षि ने सस्नेह उठाकर हृदय से लगा लिया।

"राम! सीता आपकी अभिन्न आह्लादिनी शक्ति हैं और ये लक्ष्मी-निधि आप ही के अभिन्न आह्लाद तत्व हैं। अपनी आह्लादिनी शक्ति से आह्लाद-अन्न का अनुभव करने वाले आप, आनन्दमय अन्नाद परब्रह्म परमात्मा हैं। आप सबका मंगल हो मंगल हो, मंगल हो। रघुनन्दन! अब हम सब यहाँ से जाना चाहते हैं।

देवर्षि की इच्छा में अपनी इच्छा कहकर, सानुज कौशिल्यानन्दवर्धन एवं सुनैनानन्दवर्धन ने, नारदादि सभी सिद्धों के चरण-कमलों में पुष्पाञ्जलि समर्पण कर साष्टाङ्ग दण्डवत किया और सबका अमोघ आशीर्वाद पाकर, सभी लोग अपने को कृतार्थ समझे। तदनन्तर सिद्धों के प्रस्थान करने पर अपनी-अपनी सवारियों में सवार होकर सभी लोग मार्गोत्सव के साथ राजभवन में प्रवेश किये।

इस प्रकार मिथिलाधिप नन्दन, अपनी प्यारी पत्नी से प्रमोदवन विषयक राम-कथा सुनाकर आनन्द मग्न हो गये। सिद्धि जी हर्षातिरेक से अपनी सुधि-बुधि खो बैठी पुनः धैर्य धारणकर कथा श्रवण करने की मुद्रा में स्थित हो गईं।

× × ×

१६

"लक्ष्मण ! क्रीड़ा-भवन में चारुतम चौसर बिछाने के लिये दासियों को आदेश दे दो। आज़ रघुवंश कुमार एवं निमिवंश-कुमार परस्पर चौसर का खेल खेलेंगे।"

"भैया मैं अभी-अभी पालन कर रहा हूँ, आपके आदेश का। दासी ! बड़े भैया आज मिथिलेश कुमार के साथ पाँसा खेलेंगे, दोनों नरपति-नन्दनों की यह क्रीड़ा दर्शकों को सुख सम्बर्धिका सिद्ध होगी अतएव तुम क्रीड़ा-कुंज में खेलाड़ियों एवं दर्शकों के बैठने के सुखद आसन उचित स्थानों में लगाने का प्रसन्नता-प्रदायक-प्रबन्ध करो समय से। चौसर जाल उस स्थान पर बिछना चाहिये, जहाँ से सभी दर्शक, केलिकर्ताओं की केलि-क्रिया का दर्शन कर सकें, निज रुचि के अनुसार।"

"नाथ ! अभी-अभी आप अपनी आज्ञा का पालन सुचारुरूप से किया हुआ पायेंगे, आप सब राजकुमारों के पहुँचने की देरी है।"

"भैया ! कुमार सुनयनानन्दवर्धन के साथ केलि-कुंज पहुँचने की कृपा करें आप, वहाँ दासियों ने चौसर जाल, बैठने के आसन बड़े सुन्दर ढंग से बिछा दिये हैं। हम शीघ्र भैया भरत व शत्रुघ्न को लेकर अपने मैथिल कुमारों के साथ आपके पीछे-पीछे आ रहे हैं।" लक्ष्मण कुमार ने कहा।

'हाँ एक वार्ता पूँछनी है आपश्री से।"

"वह कौन सी वार्ता है, भरत।"

"आप युगल किशोरों की क्रीड़ा-कला को जालों से सुसज्जित गवाक्ष-रन्ध्रों से, भवन की अट्टालिका में बैठा हुआ अन्तःपुर क्या देख सकता है?"

"हाँ, हाँ ! शत्रुघ्न कुमार को भेजकर वहाँ सूचना भेज दो। क्रीड़ा-भवन तो राजभवन के भीतर ही है, बाहरी लोगों का आमन्त्रण भी नहीं है, यह तो अपनी माताओं के बच्चों की केलि है, जिसे देखकर जननी-जनक को प्रसन्नता होती है। शत्रुघ्न ! जाओ, अन्तःपुर में आज के चौसर-केलि का समाचार दे आओ। सखे ! चलें, क्रीड़ा-भवन को दोनों।"

"लीजिये, आपका श्याल उठ खड़ा हो गया, चलें।" सीताग्रज की अँगुली पकड़े हुये सीताकान्त ने कहा—'निमिकुमार ! आज की क्रीड़ा आपके भाम राम की, अपने श्याल के साथ होगी, बड़ा आनन्द आयेगा। केलि दर्शन के लिये संपरिकर अन्तःपुर क्रीड़ा-भवन में पहुँच चुका है, हमारे सभी बन्धु ससखा आपके बन्धुगणों को लिये आ ही रहे हैं।"

कुंजेश्वरी से आरती उतारे हुये श्याल-भाम, एक सुन्दर भव्य सिंहासन पर विराज जाते हैं, तदनुसार सारा अवध-मिथिला समाज अपने-अपने आसनों में आसीन हो जाता है। नव कुमारों से भरा वह भव्य क्रीड़ा-भवन, मदन के क्रीड़ा कुंज को तिरस्कृत-सा कर रहा था।

"सखे। आज आपकी क्रीड़ा कुशलता का दर्शनेच्छु अन्तःपुर का समाज शीघ्र आपके कर-कञ्जों से फेंके जाने वाले, पासों के पड़ने की गति-विधि को अपने नेत्रों का विषय बनाना चाहता है इसलिये चौसर-जाल के समीप बिछे किसी भी मसनद लगे हुये आसन में अविलम्ब पधारने की कृपा करें।"

'मुझे चौसर-क्रीड़ा के कला का पूर्ण ज्ञान कहाँ है, रघुनन्दन! सर्वकलाविद विशारद तो मात्र हमारे भाम राम हैं।"

"चलिये, यह निमिकुमार का कार्पण्य, उन्हें खेले बिना अवकाश देने में समर्थ नहीं हो सकता।"

'आपका अप्रिय कार्य करने में सदा आपका आत्मसखा असमर्थ है अतएव वह कभी नहीं कह सकता कि आपश्री की इस वाणी का अनुसरण मुझसे न होगा, उसने तो केवल अपने में केलि का उत्तम ज्ञान न होने की बात कही है, श्यामसुन्दर!

"अवध आने के उपलक्ष में किये हुये मनोरंजनादि स्वागत सामग्रियों को सप्रेम ग्रहण करना, अपने सम्बन्धी की प्रसन्नता के लिये, हमारे सखा मिथिलेश कुमार को उचित ही है, अवधेश कुमार ने कहा।

'लीजिये मैं चला।"

पाणि पकड़कर प्यार से दशरथ-नन्दन ने मिथिलाधिपनंदन को इस सर्वोत्तम क्रीड़ा सहायक आसन पर आप विराजें कहकर बैठा दिया और स्वयं श्याल के सम्मुख आसन में आसीन हो गये, केलिकलाविद।

अहो! श्याम-गौर वपुष वाले विश्व-विमोहन, कोटि-कोटि कन्दर्प दर्प दलनकारी युगल नृपति कुमार, अनन्त सौन्दर्य-माधुर्य-सौकुमार्य आदि शरीर सम्पत्ति से युक्त अपने कान्ति-ज्योत्सना से क्रीड़ा-भवन को ज्योतिर्मय ज्योति पीठ बना रहे हैं, साधुवाद! साधुवाद!!

इन दोनों के शिर की केशावलि कितनी प्यारी-प्यारी, घुघुरारी, कारी-कारी, कमनीय कन्धों पर, परिलसित होकर किलोल करती हुई अपनी चिक्कनता व चमक से अलि-अवली का अनादर सी कर रही है। दोनों के सिर में सिरपेंच के ऊपर जड़ाऊदार चमचमाती टोपी प्रभा बिखेर रही है। अहह! कितनी सर्वाङ्गीण सुन्दर लग रही हैं ये, लगता है कि दोनों

की टोपियों को नयन का विषय बनाये ही रहें। कानों के कुण्डल जो मकराकृत हैं, कितने विमोहक हैं, इनकी झाँई गोल-गोल, लाल-लाल दर्श सदृश कपोलों पर पड़ती है, उपमा उत्पन्न होती है कि रसपूर्ण कपोल कुण्डों में काम के कमनीय मीन किलोल कर रहे हों। अरे ! इनकी सर्वाङ्गीण शोभा वाणी का विषय नहीं अपितु अनुभव का विषय है। परस्पर की अवलोकनि कैसी मनमोहनी है इनकी। मधुर मुसकान की माधुरी तो अमृत भरी, मोहन मन्त्र से अभिमन्त्रित यन्त्रिका है। दोनों की आजानु बाहुयें, वाजूबन्द, कड़ा और अङ्गुलीय से आभूषित हैं। कर-कमलों में इनके पाँसे कैसे सुन्दर लग रहे हैं, मानों अरुण कमल-दल पर विराजित चमचमाती चित्रित सूक्तियाँ रखी हैं। अहो ! एक-दूसरे के मुख-पंकज पराग के पीने में ये अतृप्त मधुकर से लग रहे हैं ! देखो न ! पासा फेकने के लिये कर-कंज कुछ बढ़ता सा प्रतीत होता है, किन्तु इनकी आँखें अपनी स्वार्थ-साधन की तत्परता एवं कौशल्य क्रिया से हाँथों को आगे बढ़ने में अवरोध उत्पन्न कर रही हैं। क्रीड़ा दर्शन के समुत्सुक कब से क्रीड़ा की बाट देख रहे हैं। अहो ! यह भी तो एक आनन्द विधायिनी क्रीड़ा ही है। हैं ! अट्टालिका में बैठी हुई माताओं की मुख विनिश्रिता वाणीं सी जान पड़ती है, जानकर कौशिल्यानन्द वर्धन ने कहा, "आत्मसखे ! आपके कर-कमलों में खड़खड़ाते हुये पाँसे अब भूमि में फेके जाने चाहिये। क्रीड़ा कार्य का श्रीगणेश आपश्री की ओर से प्रारम्भ होना उपयुक्त है।"

"नहीं, नहीं, आप प्रथम पाँसे फेंके, मेरे प्यारे राम !"

"नहीं, नहीं, आप हमसे सब प्रकार बड़े हैं अतएव केलि-क्रिया का उपक्रम आप करें निमिकुमार। यही कारण है कि केलि-क्रिया की शुरुआत आपश्री के द्वारा होने की मेरी इच्छा है, निमिवंश-विभूषण ! आज की क्रीड़ा भी तो जय-पराजय से सम्बन्ध रखने वाली, एक प्रकार की समर-क्रिया ही है अतः रघुवंशी प्रथम प्रहार का समय प्रतिपक्षी को देते हैं, स्वयं नहीं लेते।"

"······तो निमिवंशियों को समराङ्गण में प्रतिपक्षी पर प्रथम प्रहार करते क्या, रघुवंश-विभूषण ने सुना है ?"

"······तो केलि-क्रिया का सम्पादन कैसे हो ?"

राम के श्याल ने अपनी प्रेमावलोकनि से राम के चित्त को अपनी ओर आकर्षित करके मुसकानयुक्त, उनके कर-कमलों के नीचे अपना सुकोमल कर रखकर, धीरे से पाँसे उचका दिये, पासे पृथ्वी पर गिर पड़े। हमारे भाम-राम-रघुनन्दन की सदा जय हो, जय हो, सदा जय हो। केलि का

प्रारम्भ हो गया प्रकारान्तर से, सखे। आपश्री के अच्छे पड़े पाँसों के अनुसार श्री लक्ष्मण कुमार गोटियों का संचालन करें, ठीक है न ?

"जानकर तो हमने पाँसे फेंके नहीं, निमिनन्दन !"

"...... किन्तु ये आपके हाँथ के पासे, कर-कमलों से छूटकर गिर गये हैं, अस्तु, गिरे को उठाना तो आपश्री का स्वभावगत धर्म है। इन्हें उठाकर पुनः फेंकने की क्रिया, पुनः ग्रहण करने के लिये परस्पर बारी-बारी होती रहे, रघुनन्दन !"

"...... तब तो केलि-समर का प्रारम्भिक प्रहार हमारा ही सिद्ध हुआ।"

"...... नहीं, नहीं, न आपकी ओर से हुआ न आपके श्याल की ओर से।"

"यह कैसे ?"

"देखिये ! आपने पासे जब फेंके ही नहीं तो प्रारम्भिक व्यापार आपका नहीं सिद्ध होता और न आपके सखा का क्योंकि उसके पासे उसके हाँथ में है, पृथ्वी में पड़े पाँसे आपश्री के हैं, ये तो आपके श्याल का कठोर कर-स्पर्श, आपके कराब्जों से होते ही न सहकर अपने से उचक गये हैं या यों कहिये कि हम दोनों को प्रथम पाँसे फेंकते न देखकर, आपके बार-बार कर-कमलों का प्यार पाने के लोभ का संवरण न करके स्वयं पासे पृथ्वी पर पड़कर केलि की प्रारम्भिक क्रिया का संपादन कर दिये हैं, अब इसमें हम दोनों की बात रह गई......मुसुकराकर निमिकुल कुमार ने कहा।

"आत्मज्ञानि कुलोत्पन्न कुमार की सामयिक चतुरता की बलिहारी है बलिहारी !"

"ज्ञानियों के ज्ञेय की बलिहारी है, रघुनन्दन ! जिसने ब्रह्मा से लेकर समस्त जीवों की बुद्धि में प्रकाश का वितरण किया है क्योंकि ज्ञान-स्वरूप वह स्वयं है"—मन्द मुस्कान के साथ लक्ष्मीनिधि ने कहा।

जय हो, जय हो, युगल नरपति-नन्दनों की......जय ध्वनि के साथ नीचे-ऊँचे बैठी हुई समाज पुष्प-वर्षा करने लगी।

"हमारे रघुवंश विभूषण रामभद्र की सदा जय हो"—कहकर निमि-कुमार ने पासे फेंके......ये पौ बारह आये......लीजिये यह गोटी मारी गई आपकी। अब आप श्री की बारी है, पाँसे फेंके।"

"निमिकुल भूषण की जय हो......कहकर राम ने पाँसे चलाये, लीजिये सात पड़ने से आपकी भी गोटी मारी गई।"

इस प्रकार कौशिल्यानन्दन के कहने पर, सुनैनानन्दन ने 'राम-रघु-नन्दन की जय हो—कहकर पाँसे चलाये ....

"लीजिये एक से आपकी गोटी मारी गई और बाकी से हमारी गोटी पककर, अपुनरावर्ती केन्द्र में पहुँच गई। अब आपश्री पाँसे चलायें।"

"जय हो निमिनन्दन की कहकर राम ने पाँसे फेंके, लीजिये तीन से आपकी गोटी मारी, बाकी से अपनी मरी गोटी को खड़ी कर दिया।"

इस प्रकार दोनों श्याल-भाम एक-दूसरे की जय बोलकर, अपने-अपने कर-कमलों में खड़खड़ाते हुये पाँसे फेंकते। दोनों की मन्द-मुसकानि एवं तिरछी तकानि एक-दूसरे को ही अपनी ओर आकृष्ट कर रही हो सो नहीं अपितु सभी दर्शकों के चित्त को अपहरण कर रही थी। बीच-बीच में गोटी के मारे जाने पर समाज में ताली की बजनि एवं हँसनि की ध्वनि हर्षोत्पादिका सिद्ध हो रहीं थी।

"उर्मिला! देखो न, भैया के क्रीड़न विधि को। अहो! ऐसा लगता है कि पाँसे भैया की आज्ञा के अनुवर्तनकारी हैं।" मैथिली ने कहा।

"हाँ! जीजी यह स्पष्ट है कि श्यामसुन्दर-रघुनन्दन जू अब तक अपनी विजयश्री को पा जाते किन्तु भैया के क्रीड़ा कौशल्य के आगे कौशल किशोर की एक नहीं चलती।"—उर्मिला ने कहा।

"अभी तो युगल कुमारों की क्रीड़न प्रक्रिया एक सम चल रही है, भविष्य में किसकी बाजी जय से और किसकी पराजय से संयुक्त होगी, कहा नहीं जा सकता।"—माण्डवी ने कहा "जीजी! हमें तो ऐसी प्रतीति हो रही है कि ये दोनों जब तक खेलते रहें इनकी हारि-जीति का दर्शन दुर्लभ रहेगा क्योंकि ये दोनों अपने प्रतिपक्षी की ही विजय चाहते हैं, तभी तो एक-दूसरे की जय कहकर ही पासे फेंकते हैं। इनकी प्रीति-प्रतीति तथा क्रीड़न-क्रिया परस्पर जैसी है, उसे हृदयङ्गम करने के लिये वीणा-वादिनी सरस्वती भी समर्थ नहीं हो सकती।"—श्रुतिकीर्ति ने कहा।

"हम तो यह चाहती हैं कि श्याल-भाम की जन-मन रञ्जनी क्रीड़ा इसी प्रकार प्रेम भरी चलती रहे, कभी इति को न प्राप्त हो, कितना आनन्द आ रहा है युगल केलि के दर्शन में?"—बैदेही ने कहा।

उर्मिला ने पूँछा कि—'आप सबको किसकी जीति प्रिय है?' सभी सखियों समेत सभी बहिनों ने समवेत स्वर में कहा—जिसकी विजय श्याल के भाम चाहते हैं।

तब तो हमारे भैया की ही विजय सिद्ध होगी—सभी अनुजाओं ने कहा।

'किन्तु खेल का अन्त नहीं दीख रहा है'—वैदेही ने कहा। इतने में ही समाज में तालियाँ बजीं और शब्द छा गया, धन्य है युगल कुमारों की क्रीड़ा चातुरी को।

"समय का अतिक्रमण हो रहा है, रघुनन्दन! हम भगवत-प्रसाद पाने की प्रतीक्षा में हैं। कुमार लक्ष्मीनिधि को अपने सामने बिठाकर ही, हमें भोजन अत्यन्त रुचिकारी सिद्ध होगा।" प्रतिहारी ने आकर श्रीमान् चक्रवर्ती जी का संदेश श्रीराम के श्रवणों तक पहुँचाया।

सुनकर राम ने कहा, "सखे! श्रीमान पिता जी भोग आरोगने के लिये आपकी प्रतीक्षा में हैं।"

'अहो! अपराध हो गया, हमारी प्रतीक्षा श्रीचक्रवर्तीजी को करनी पड़ी, समय का अतिक्रमण हो गया। क्रीड़ा-जनित आनन्द के सरोवर में गोता लगाने लगे हम दोनों। पाँसे वहीं रखकर—चलें श्याम सुन्दर, शीघ्र चलें।"

दोनों उठकर हृदयालिङ्गन करते हैं। 'श्याल-भाम की जय हो, जय हो' की ध्वनि क्रीड़ा-कुन्ज को शब्दायमान कर देती है।

अहो! भगवान और उनके भक्त की लीला वही समझ सकते हैं। श्याल, भाम की और भाम, श्याल की जय बोल रहे थे इसलिये अभी तक केलि में हार-जीत का आभास नहीं प्राप्त हो सका अन्यथा उनकी वाणी में असत्यता का आरोप हो जाता। धन्य है युगल कुमारों की प्रीति को।

समाज से बार-बार यही शब्द सुनाई दे रहा था। इस प्रकार चौसर-क्रीड़ा का वर्णन अपने प्राणवल्लभ से श्रवण कर सिद्धि जी आनन्द से ओत-प्रोत हो गईं। "अहो! चक्रवर्ती जी का कितना प्यार आपश्री पर है, जिसमें मेरा सौभाग्य निहित है" ...... कहकर और कथामृत पान कराने की प्रार्थना, प्राणनाथ से पुनः करने लगीं।

× × ×

१७

राजोचित शिकारी वेष धारण कर आखेट-कला प्रशिक्षण प्राप्त गजों की सवारी किये हुये, चारों चक्रवर्ती-कुमार आखेट की लीला सम्पादन करने के लिये स-समाज जा रहे थे, साथ में शिकारी कुत्ते और कई एक शिकार-कला-कुशल जंगली बहेलिये भी थे।

सामयिक वाद्य-ध्वनि मार्ग में होने से समाज, शिकार खेलने के लिये

उत्साहित हो रहा था। समय से सभी प्रमोद बन के उस भाग में पहुँच गये, जहाँ शेर, चीते, तेंदुए, गेंडे व्याघ्र आदि हिंसक वन पशु अधिकतर रहकर, मन को भय उत्पन्न किया करते थे।

"लक्ष्मण! शिकारियों को यथास्थान मचानों पर बैठा दो, वे लोग सजगता के साथ अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर, शिकार करने को तैयार रहें। हम इस स्थान में हाथी के ऊपर बैठकर, हिंसकों को दण्ड देने के लिये उद्यत रहेंगे। तुम, भरत और शत्रुघ्न क्रमशः तीन दिशाओं में उचित स्थान पर, अपने हाँथी को खड़ा कर, आखेट की क्रिया करने को तैयार रहो। शेष समाज अपने-अपने हथियार लेकर, वधिकों के सुझाव के अनुसार, वाद्य-ध्वनि के साथ यथोचित दिशा की ओर जंगली पशुओं को भगाने का प्रयत्न हाँक मार-मार कर करें।" श्रीरघुवीर राम ने कहा।

"प्रभो! आपकी आज्ञा का अनुवर्तन अविलम्ब होगा"—कहकर लक्ष्मण कुमार ने सबको सजगता का आदेश देकर, स्वयं को व अन्य सबको यथास्थान खड़ाकर दिया, हाँका होने लगा, वन शब्दायमान हो गया, सभी जंगली-जीव भय से भरकर इधर-उधर भागने लगे, कुछ अन्य वनों में प्रवेश कर गये, कुछ वहीं घनी झाड़ियों में अपने को छिपाकर बैठ गये, कुछ शिकारियों की दिशा में ही भगे, जिनमें कुछ मार में न आये कुछ उचित स्थान में शिकारियों के अस्त्र न लगने से भाग निकले किन्तु अधमरे-से दूर देश में मूर्छित होकर गिर पड़े, कुछ जानवर शिकारियों की सही चोट लगने से शिकारियों के हर्ष को समुन्नतशील बनाते हुये वहीं मर गये।

इतने में ही एक बड़ा विकराल-वदन वाला व्याघ्र बड़ी जोर से गर्जना करता हुआ, आकाश में उछलकर पुनः पृथ्वी में और पृथ्वी से उछलकर पुनः आकाश में जाता, उसके संप्रवेग से शिकारियों का निशाना खाली जाता, उसकी दहाड़ से सभी शिकारी भयभीत हो जाते और उनके हाँथ ढीले पड़ जाते थे, आँखे झप जाती थीं। उछलता-कूदता हुआ वह व्याघ्र, रघुनन्दन राम की ओर बढ़ा, सबके हृदय श्रीरामभद्र का मंगला-नुशासन करने लगे। हमारे वीर-शिरोमणि भाम राम धनुष पर बाण चढ़ाकर, सजग हाथी के ऊपर कनक-जड़ित हौदे पर बैठे हुये वन को प्रकाशित कर रहे थे, उनकी छबि-छिटक-छिटक कर चारों ओर छहरा रही थी।

श्री राम के सवारी का महामत्त गजराज, मदाम्बु को चुआता हुआ, महावत के शासन की प्रतीक्षा में जागरूक बिना घबड़ाहट के खड़ा था, उधर

व्याघ्र भी बड़ी-बड़ी दाढ़ों व खीशों से युक्त मुँह बा-बाकर दहाड़ता हुआ आकाश में उछलकर हाथी के मस्तक पर कूदने ही वाला था कि पुरुष सिंह रघुनन्दन ने एक बाण मारकर उसे पृथ्वी में धराशायी कर दिया और उसके मुख से एक ज्योति निकलकर, दिव्य देव-कुमार के रूप में परिवर्तित हो गई, इतने ही में एक दिव्य विमान आया, विमानस्थ पुरुषों ने उस देव पुरुष से प्रार्थना की कि विमान में चढ़कर स्वर्ग पधारने की कृपा करें।

पतित-पावन-रघुनन्दन-राम हाँथी से उतरकर भूमि में खड़े हो गये, तब उस पुरुष ने श्रीरामभद्र जू की सादर-सप्रेम स्तुति तथा प्रदक्षिणा करके दण्डवत् प्रणाम किया तथा स्वर्ग-यात्रा की आज्ञा माँगी।

"भाई ! तुम अभी व्याघ्र शरीर धारी थे और अब देव शरीर से संयुक्त हो, अस्तु, आश्चर्य पूर्ण इस घटना के कारण का परिचय देने से मुझ राम को वंचित न रखो।"

"महाबाहो ! आपश्री की भगवती-भास्वती कृपा ने मुझ पतित को परम-पूत बना दिया है, जिसके प्रभाव से देव शरीर को प्राप्त कर, इस विमान से स्वर्गलोक प्रस्थान कर रहा हूँ, देव।"

"अपना पूर्व वृत्तान्त सुनाने की कृपा करो। व्याघ्र-काया की प्राप्ति कैसे हुई थी ?"

"भगवन ! आपश्री देवाधि देव परब्रह्म परमात्मा हैं। जगत के कारणभूत सबके अन्तर्यामी आत्मा हैं अतएव आपको अविज्ञेय कोई वस्तु नहीं है तथापि मेरे मुख से श्रवण करें...... प्रभो ! पूर्व त्रेतायुग में मैं व्याघ्र देव नामक मुनि था। मेरा मुख व्याघ्र जैसा अदर्शनीय होने से ही, मैं इस नाम से विख्यात हुआ था। विद्वान, वेदान्त दृष्टाभिमानी, निर्गुण-निर्विशेष निराकार के ज्ञानाभिमान की गठरी सिर पर लादे हुये, सगुण-सविशेष-साकार ब्रह्म का निरादर करता था। एक बार श्रीदेवर्षि नारद हरिगुण गाते, वीणा बजाते हुये, आश्रम के समीप से निकले। मुने ! कहाँ जा रहे हैं ?"—मैंने पूँछा।

"मैं अयोध्या जाने के लिये त्वरान्वित हूँ।" देवर्षि ने कहा।

"अयोध्या जाने का क्या कारण है ?"

"अपने इष्टदेव दाशरथि राम का दर्शन करने जा रहा हूँ।"

"अहो ! आश्चर्य, ब्रह्मपुत्र का इष्टदेव एक राजपुत्र ? यह कैसे ?"

"जो पूर्णतम परब्रह्म परमात्मा हैं, वही ब्रह्मादि देवताओं से प्रार्थित होकर,

इस समय दशरथ अजिर बिहारी बना है, मुने ! आप भी चलें दर्शन हेतु मेरे साथ।''

'नहीं, नहीं, मैं राजा के छोकरे का दर्शन करने नहीं जाता। 'अहं ब्रह्मास्मि' कहाँ जाऊँ ? किसे देखूँ ? इत्यादि उत्तर-प्रत्युत्तर के कारण देवर्षि मुझ ज्ञानाभिमानी से असंतुष्ट होकर श्राप दे दिये कि –''तू अभिमानी ब्रह्म के सगुण साकार स्वरूप का निन्दक है, तेरा जैसा मुख है, वैसा कर्म भी है, इसलिये तू व्याघ्र शरीर धारण कर जगत में अभी से विचरण कर।'' मैं भयभीत उनके चरणों में पड़कर श्रापोद्धार के लिये आर्त होकर प्रार्थना करने लगा।''

''अगले त्रेता में जब अयोध्या में परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान राम का अवतार होगा तब तुम यहाँ वन में अपने विकराल व्याघ्र-शरीर से निवास करोगे। श्रीराम जब आखेट करने के लिये वन में आकर, तुम्हें अपने राम नामाङ्कित बाण से मारेंगे तब तुम्हारा उद्धार हो जायेगा। दिव्य देव शरीर पाकर देव विमान के द्वारा स्वर्गलोक चले जाओगे।

''देवर्षि ने आशीर्वाद दिया। आज श्रीनारद जी का आशीर्वाद वृक्ष फलित होकर, नेत्रों का विषय बन रहा है। हे रघुवंश शिरोमणे ! आपकी जय हो। हे परब्रह्म परमात्मन् ! आपकी सदा जय हो। आपश्री के सगुण-साकार स्वरूप में मेरी अचल भक्ति बनी रहे।'' यह प्रार्थना व प्रणाम करके वह देव विमानस्थ हो गया और रघुनन्दन राम की जय हो, जय हो······ कहते हुये स्वर्ग सिधार गया।

यह आश्चर्योत्पादिनी कथा श्री सीताकान्त ने अयोध्या में, सीताग्रज को सुनाई थी। समय पाकर आज मैं, अपनी प्रियतमा के कर्णों तक उसे पहुँचा सका हूँ।

अपने प्राणधन-मुख-विनिसृत राम-कथा को श्रवणकर, आनन्द विभोर हो गईं सिद्धि जी।

पुनः राम कथा सुनने की आतुरता से, कथा श्रवण कराने की प्रार्थना कर, सम्पुटाञ्जली मुद्रा में स्थित हो गईं।

× × ×

१८

सन्ध्या का मुहावना समय था, किरण माली की लालिमा से परि-लसित किरणें, गृह-वाटिका के हरे-हरे पुष्प वृक्षों व उनके पुष्पों पर पड़ रही

थीं, जिससे वृक्ष स्वर्ण मिश्रित वैदूर्य-मणि के घने पत्र-समूहों से आच्छादित और विविध रंगों के पुष्प से ईषत-स्वर्णिम आभा से आभान्वित हो करके, अपने-अपने रंग में चमत्कारिक दृश्य उपस्थित कर रहे थे। नव दूर्वादल आलिंगित भूमि स्वर्ण सूत्रों से जटित हरे रंग की साटिका से परिधान्वित सी प्रतीत हो रही थी। वाटिका में मोरों की मधुर-मधुर बोली बड़ी ही कर्ण-प्रिय थी, पक्षियों की चहचहाहट, भ्रमरों की गुंजार, सुगन्ध से भरा शीतल एवं मन्द वायु, ये सब मनमें प्रसन्नता की परिवृद्धि करने में प्रयत्नशील थे, श्री आनन्दकन्द रघुनन्दन के आनन्दमय कनक-भवन की भव्य वाटिका भी आनन्दमय थी।

सुख-स्वरूप श्री राम अपने श्याल सीताग्रज के मनोरंजन के लिये, उनके कर-कमलों को अपने पाणि-पंकज में लेकर, कनक-वाटिका में विहार कर रहे थे। उन युगल नृप-कुमारों के श्याम-गौर वपुष की राशि राशि छबि छिटक-छिटक कर, भूमि, भूरुह और पराग पूर्ण पुष्पों के भाग्य-वैभव को समुन्नतशील बना रही थी। दोनों की युगल-माधुरी पर मुग्ध होकर किसी के द्वारा युगल कुमारों के जयघोष के साथ पुष्प-वर्षा की जा रही थी। दोनों राजकुमार परस्पर प्रीति की इयत्ता का अन्वेषण करने के लिये उद्योग तत्परता का दृश्य-सा, एक दूसरे को दृष्टिगोचर कर-करा रहे थे! रजनी भी राकाराशि के थाल में सजाकर आह्लाद प्रदायिका शीतल-सुधासिक्त किरणों, श्याल-भाम की आरती उतारने के लिये, समुत्सुक-सी जान पड़ रही थी।

अट्टालिका में बैठी वैदेही जू, अपनी अनुजाओं एवं सखी-सहेलियों सहित गवाक्षों से, श्याल-भाम की जोड़ी का गृह-वाटिका विहार को देख-देख कर परम प्रसन्न हो रही थीं।

: माण्डवी! देखो न! श्याम-गौर तेज से निष्क्रमित आभा चारों ओर समीपवर्ती प्रान्त में प्रसारित होकर भूमि एवं वृक्षावली को कैसे आभान्वित कर रही है।"

"जीजी! सीताग्रज और सीताकान्त की यह मिथुन जोड़ी अपने वैभव से (काय-वैभव, गुण-वैभव) स्वर्गस्थ सुरों एवं सुरललनाओं के चित्त को भी आकर्षित करने वाली सर्वथा सिद्ध हो रही है, तभी तो बार-बार आकाश से सुगन्धित सुमनों की वर्षा के साथ जय-जय की ध्वनि श्रवणों का विषय बन रही है।" माण्डवी ने कहा।

"अहो! भूमि पर वर्षे हुए देव सुमन ऐसी शोभा समुत्पन्न कर रहे हैं जैसे नीले आकाश में नक्षत्रों का बाहुल्य। पृथ्वी पर जड़ाऊ जूतियों को

धारण कर, युगल कुमारों का पद-न्यास, दो शारदीय पूर्णिमा के युगल चन्द्रों का गगन-पथ से गमन करने की भाँति अतीव, प्रिय और आकर्षक सिद्ध हो रहा है।" उर्मिला की यह प्रिय लगने वाली वार्ता श्रवण कर, श्रुति कीर्ति ने कहा—

"जीजी ! यह प्रतीति नहीं हो रही है कि हमारे भैया के भाग्यार्क का साक्षात् स्वरूप सीताकान्त हैं कि रसिक राय रघुनन्दन का भाग्य-सूर्य हमारे भैया के स्वरूप में उदित है। दोनों का पारस्परिक प्रेम यह निर्णय नही लेने देता कि कौन प्रेमी है, कौन प्रेमास्पद। इनके परस्पर के समर्पण को देखकर, यह निश्चय नहीं होता कि ग्राह्य कौन हैं और कौन ग्रहीता। इनकी साथ-साथ मज्जन-अशन और शयन की क्रिया भी उक्त निर्णय में सहयोग नहीं देती।"

"अरी ! श्रुतिकीर्ति ! उत्तम पति-पत्नी परस्पर रस-रसिक होते हैं, प्रेमी-प्रेमास्पद होते हैं किन्तु उनकी पहचान स्त्रीत्व व पुरुषत्व बाह्य लक्षणों से बाह्य बुद्धि वाले तो कर लेते हैं परन्तु उनके परस्पर के प्रेम और समर्पण को उनके अतिरिक्त कोई नहीं जानता। इसी प्रकार प्रेमी भक्त और उनके प्रेमास्पद भगवान के विषय की भी वार्ता शास्त्र निरूपण करते हैं, तदनुसार श्याल-भाम की बाह्य पहचान उनके गौर-श्याम वपु एवं परस्पर के सम्बो-धनात्मक वाणी से की जा सकती है किन्तु अन्तर भाव और प्रेम दोनों का अतर्क्य एवं मनसा-गोचर है इसलिए तुम्हारे कथनानुसार अवश्यमेव यह निर्णय नहीं लिया जा सकता कि इन दोनों में कौन किसका भाग्यार्क है ?" वैदेही ने कहा।

"जीजी ! बुद्धि के शीशे में पड़े ज्ञान के आलोक से आपश्री की अनुजा की ऐसी समझ है कि इन दोनों नृपति-नन्दनों का भाग्य-भानु एवं उस भाग्य की विधायिका भी आपश्री ही हैं।" उर्मिला के ऐसा कहते ही माण्डवी और श्रुतिकीर्ति सखियों के साथ समवेत स्वर में बोल उठी...... सर्वथा सत्य है, उर्मिला कथन जीजी।

इन दोनों के परस्पर हृदयगत-भावों की भूमिका, भूमिजा ही सहज सिद्ध होती हैं—जय हो ! जय हो ! जय हो हमारी जीजी जनकात्मजा जू की......कहकर विदेह वंश किशोरियाँ अपने भैया विदेह वंश-विभूषण की ओर देखकर कहती हैं कि, हम सब बड़भागिनी हैं, जिन्हें ऐसे हमारे भैया अपनी गोद में बिठाकर लाड़-प्यार करते हैं तथा हमारी सभी सुख-सुविधाओं की चिन्ता रखते हुए, उनका योग-क्षेम करना अपना स्वरूप गत सेवाधर्म समझते हैं।

"अहो ! आज यह गृह-वाटिका आपके आगमन के उपलक्ष में स्वयं श्री शोभा से सम्पन्न होकर, भू और नीलादेवी के साथ आपश्री को बधाई उसी प्रकार दे रही है जैसे सिन्धुजा अपने बन्धु धन्वन्तरि को। पक्षियों की चहचहाहट ही जिसकी वेद-ध्वनि है, भ्रमरों की गुनागुनाहट, बन्दी जनों से गाई जाने वाली विरदावलि है। मोर-मोरनी की मधुर-मधुर बोली से युक्त नृत्य ही गन्धर्वो के साथ अप्सराओं की संगीतपूर्ण नृत्यकला का प्रदर्शन है। पवन संयोग से वृक्षों की कमनीय मन्द-मन्द झुकनि ही प्रेमोन्मत्त कलाकारों की भाव-भंगिमा है, वायु प्रसंग से वृक्षों से सनसनाहट की झंकार ही मधुरातिमधुर वाद्य-ध्वनि है। भूमि में हरे-हरे दूर्बादल का सुकोमल कालीन जिसमें बीच-बीच में कई रंग के सुन्दर फूल कढ़े हुए हैं, दर्शकों को बैठने के लिये बिछा है। पुष्पित-पुष्प पंक्तियाँ नायिकाओं के रूप में अपने-अपने करों में, पुष्पों का स्वर्णिम थाल सजाकर, आपश्री जैसे अपने बन्धु की आरती उतार रही हैं। इस सुन्दर सविधि सत्कार क्रिया से प्रसन्न सुरगण सुरभित सुमनों की वर्षा भी, आपके मंगलानुशासन के लिये आपके शिर व शरीर पर कर रहे हैं। शीतल-मन्द सुगन्ध वायु के प्रवहन रूप चमर के चलने एवं आकाश का परम निर्मल बूटेदार छत्र लगे रहने से, स्वागत-कर्ता के वैभव एवं स्वागत ग्रहीता के महानता का ज्ञान सर्वभावेन हो जाता है। अहो ! फलभार से नमित ये वृक्षों की डालियाँ, अपने-अपने कर से फलों को समर्पण करती हुई, प्रणाम कर रही हैं, आपके पाद-पंकजों में। कुछ मधुप आपके चारों ओर मँड़राते हुये, आपकी परिक्रमा कर रहे हैं, आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

आज अपने प्राणातिथि की सेवा में संलग्न गृह-वनराजि श्री को देख-देखकर, आपके आत्मसखा को बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि इसका सदुपयोग हो गया जो आपके पहुनाई कार्य में आपको सुख दे सकी।" इस प्रकार रघुनन्दन राम अपने श्याल को लेकर वाटिका में ही सुव्यवस्थित स्वर्ण सिंहासन पर बैठ गये और प्रेम स्पर्श व प्रेमालाप करते-करते, एक दूसरे में लिपटकर, अपने को भूल गये। तदनन्तर ......

"मेरे सर्वस्व ! प्राण-प्रिय राम ! आप श्री का औदार्य सर्वभावेन महान है महोदधि से भी। आप अपने अकिंचन आश्रितों को अपने समान महान बनाने वाले व अपना सर्वस्व समर्पण उनको कर देने में ही अपनी उपयोगिता समझकर कृतकृत्य होते हैं। जय हो, जय हो हमारे भाम राम के सहज स्वभाव की, जिसमें जगत के अखिल जीवों का कल्याण सतत् निहित रहता है।

अहो ! यह परम सती प्रकृति-प्रभा, परम पुरुष की परम पुनीत पत्नी है जो अपने स्वरूपगत धर्मों के विभुत्व का आंशिक प्रयोजन अपने लिये होने का स्वप्न भी नहीं देखती, वह अनन्यतया परम पुरुष के भोग्य स्वरूप में स्थित रहती है, बिना खाये वैसे ही जीती है जैसे जगत् में अन्न, वह कुछ खाये बिना ही जीता है, अन्न का भोक्ता अन्नाद होता है, अन्न का प्रयोजन अपने लिये नहीं होता अतः प्रकृति एवं प्राकृतिक पदार्थों का भोक्ता मात्र एक पुरुष है, जो जगत के जीव, प्रकृति के स्वयं भोक्ता बनते हैं, वे अकृत करण कार्य का ही अनुष्ठान करते हैं और उसके परिणाम स्वरूप तमसाछन्न आसुर्य लोकों की प्राप्ति करते हैं, दुःख के पिण्ड बन जाते हैं इसलिये ज्ञान वान को चाहिये कि शरीर निर्वाह मात्र का प्रयोजन प्राकृतिक पदार्थों से रखे, वह भी भगवत् सर्मपित कर, भगवान के सेवा में आने वाले शरीर को भगवान के लिये सुरक्षित रखने की भावना से उपयोग में लाये। ममता, भोक्तापन और आसक्ति के बीज का सर्वथा अभाव हो, इस प्रकार के प्रकृति-सम्बन्ध से बन्धन नहीं होता अपितु मोक्ष होता है।

"श्याम सुन्दर ! हमारे आचार्य श्री ने आपको ही प्रकृति का पति, भोक्ता, परम पुरुष बतलाकर, परमार्थ वस्तु का बोध कराया है, अतएव श्रीमुख से कथित, प्रकृति की सेवा के संभोक्ता आप ही हैं, यह नहीं। आपके श्याल का भोग्य अपनी सेवा से विकसित आपका मुखाम्भोज है, उसी के अनुभव में श्याल को निमग्न रखना, भाम का परमातिथ्य प्रदान करना है, सत्कार वही है जिसे ग्रहण करने वाला परमाशान्ति की शय्या में सुख की नींव ले सके।" लक्ष्मीनिधि ने ऐसा कहा। तदनन्तर······

"आप और आपका राम जब एक-दूसरे की आत्मा हैं, तब स्वयं एक-दूसरे की नियत वस्तु हम दोनों सहज सिद्ध हैं अतएव हम, हमारा सहज ही आपके अधिकार की वस्तु है और आप एवं आपका, स्वाभाविक हमारे अधिकार की वस्तु है। अतः क्या लेना क्या देना। लेने-देने में द्वैत का दर्शन होने लगता है, इससे जिसे जो चाहिए मनमानी स्वयं की वस्तु का स्वयं उपयोग करे।

देखिये ! शारदीय चन्द्र का सेवन इस आसन में आसीन, हम-लोग कुछ समय से कर रहे हैं। चन्द्रमा का सुधासिक्त-शीतल प्रकाश सुखावह और मन को बहुत प्रिय लग रहा है किन्तु हम लोग अब यहाँ से भवन के भीतर चलें क्योंकि अन्तःपुर में आपकी प्रतीक्षा होती होगी।"—रघुकुल भूषण ने कहा।

"अवश्य अब हम लोग यहाँ से चलें।" श्याल मुख से श्रवण कर भाम राम, वैदेही-बन्धु का हाथ पकड़कर, अन्तःपुर में प्रवेश कर गये।

लक्ष्मीनिधि जी, जल भरे नयनों से, अपनी वल्लभा से अपने भाम श्यामसुन्दर की प्रीति-रीति और औदार्यमयी गाथा सुनाकर, प्रेम-चिन्हों से चिन्हित हो गये। श्री सिद्धि कुँअरि जी अतृप्त स्थिति में, रामकथामृत पान करने की मुद्रा में पुनः स्थित हो गई।

× × ×

१९

सुन्दर सुहावनी ब्रह्म-वेला में ब्रह्म-चिंतन करने से ब्रह्म ज्ञान एवं ब्रह्म-प्राप्ति के साधन में तथा शरीर अछत पूर्णतम परब्रह्म परमात्मा के सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार स्वरूप को साक्षात् दर्शनानन्द का अनुभव करने में बड़ी सहायता मिलती है। अपने आचार्य श्रीमर्हषि याज्ञवल्क्य जी महाराज ने कृपा कर प्रेरणा दी थी। साथ ही षड़ाक्षर राम तारक महामंत्र के अनुष्ठान की विधि बताकर, मन्त्रराज जप का महत्व बतलाने के सन्दर्भ में कहा था ......"जो कोई इस मन्त्र का भक्त होकर, त्रिकरण शुचिता के साथ, स्वरूपतः मन्त्रराज के अर्थ में स्थित होकर, देव-दुर्लभ षडक्षर राम-मन्त्र का अनुष्ठान प्रीति-प्रतीति और सुरीति के साथ करेगा, वह राम रूप हो जायेगा एवं इस मन्त्र के प्रभाव से सगुण-साकार, सच्चिदानन्दात्मक विग्रह राम का मनोऽभिलषित दर्शन तथा उनकी दिव्य लीलाओं का प्राकट्य, अपने चिदाकाश में ध्यान के समय सुलभ कर सकेगा, यह मैं त्रिसत्य कहता हूँ।"

सदगुरु-कृपा से ही उनके वचनों में दास को महाविश्वास सहज श्रद्धा के साथ होने में, कोई साधन नहीं अपनाना पड़ा। योगिवर्य आचार्य श्री के कृपा प्रसाद से ही, निमिकुलोत्पन्न सभी राजा आत्मविशारद होते चले आ रहे हैं। इस अपने अकिंचन दास पर तो उनकी महती कृपा है, अपने लाड़-प्यार से पोषित दास को एक दिन सभा में निमिकुल-भूषण कहकर सम्बोधित किया था उन्होंने, साथ ही उनके वाक्य प्रमाणित करने के लिये, देवगिरा सभा के श्रवणों का विषय बनी थी। आकाश से पुष्प भी बिखेरे गये थे।

आचार्यश्री के उपदेष्टित वचनों के अनुसार उपनयन काल से अब तक की निदचर्या व मन्त्रराज का अनुष्ठान प्रीति-प्रतीति और सुरीति के साथ सदगुरु प्रसाद से चल रहा है। अहो! आचार्योपदिष्ट वार्ता के पालन

ने, पालक को स्वरूप में स्थित करके, परम प्राप्तव्य पुरुषार्थ की प्राप्ति में विलम्ब नहीं होने दिया ।

पूर्व संस्कार वश जन्म होते ही इसके मुख से राम नाम निकला था, यह अपनी अम्बा बतलाया करती हैं, अस्तु, साकेत पीठ प्रतिष्ठित पूर्णतम परब्रह्म परमात्मा पुरुषोत्तम भगवान के सगुण-साकार विग्रह के नाम, रूप, लीला और धाम में अपनी अनुरक्ति परिवर्धित होने लगी । समय से सद्गुरु की प्राप्ति होने से अंकुर वृक्ष का रूप धारण करने लगा ।

आचार्यश्री ने कहा था, वत्स ! जो पूर्णतम परब्रह्म परमात्मा वेद-वेद्य हैं, जिसे ब्रह्मचर्य पालन रूप महाव्रत एवं रमा विलास की परम वितृष्णता से युक्त शिष्य, सद्गुरु के सांकेतिक वाणी द्वारा समझने की चेष्टा किया करते हैं, वह परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान तुमसे मिलने के लिये स्वयं तुम्हारे प्राङ्गण में आयेगा और तुम्हें अपने सगे श्याले के रूप में पाकर अपनी आँखों की जरनि जुड़ायेगा ।' ये गुरु वचन उनके शिष्य के हृदय की गुहा में, उसके ही साथ स्थित रहकर ध्यान की आँखों से उस अविज्ञेय, दुर्निरीक्ष्य को निरन्तर देखते हुए भी, चर्म चक्षुओं का विषय बनाने के लिये, विरह की व्यथा उत्पन्न कर दिये, षडक्षर मंत्र में अतिनिष्ठा के कारण मंत्र-देव के दर्शन बिना छटपटाने लगा । गुरु-प्रसाद से स्व-स्वरूप स्थिति, मन्त्रार्थ में स्थिति सहज हो गई थी अतः मन्त्र के चतुर्थ पद के अनुसन्धान से सम्बन्ध भावना अति दृढ़ बन गई । मन्त्र-जप काल में सात्विक भावों का उदय-अस्त बना रहता था ।

एक दिन विरह-वेदना से पीड़ित दास मंत्रराज के अनुष्ठान में ध्यानस्थ था, एकाएक चिदाकाश के प्रदेश में दिव्य ज्योति के दर्शन हुये पुनः दिखाई पड़ा कि ज्योति-मध्य रत्न-जटित पीठ पर साकेतेश्वरेश्वरी बैठे हैं नव दूलह-दुलहिन के वेष को धारण किये हुये, नख-शिखान्त अपने अनन्त सौन्दर्य, माधुर्य, सौकुमार्य, सौष्ठव, लावण्यादि काय-वैभव से सम्पन्न चारों ओर उस सम्पत्ति को बिखेरते से जान पड़ रहे थे । षोड़ष-द्वादश वर्ष की नित्य अवस्था सदा उन्हें किशोर-किशोरी कहने के लिये बाध्य कर रही थी । अपनी चितवनि मुसकनि से द्रष्टा के मन को मथे जा रहे थे । हाँ ! यह प्राकृतिक मानवीय विग्रह में जैसे हैं, वैसे ही अपने को ज्ञान का विषय बना रहा था परन्तु युगल किशोर-किशोरी, मन वाणी से अतीत, अलौकिक, सच्चिदानन्दात्मक विग्रहवान थे । दोनों की दृष्टि, द्रष्टा की ओर अति स्नेह भरी कृपापूर्ण थी, यह अपने को सम्हालने में असमर्थ था ।

साकेत बिहारी ने अपने कृपा-वैभव का दर्शन-दान देकर, इसके पाणि-पल्लवों को पकड़कर, अपने कर-कंजों का विषय बनाया और अपने समीप आकर्षित कर लिया धीरे-धीरे पुनः शिर कन्धों का स्पर्श करते हुये परम प्यार से कहा कि, "आप चिन्ता न करें, आपके गुरु-वचन सत्य होकर रहेंगे, मैं सदा-सदा का आपका बहनोई हूँ और ये बहिन हैं तथा आप हमारे दृग-तारे प्यारे श्याल और इनके परमप्रिय बड़े भ्राता हैं, कुछ ही दिनों में हम इसी सम्बन्ध सुख का आस्वादन लेने के लिये, आपके नगर में स्वयं उसी प्रकार आयेंगे, जिस प्रकार मकरन्द पीने के लिये मधु-लोभी मधुप पंकज प्रपूरित सरोवर में गमन करता है।"……तदनन्तर चिदाकाशीय दृश्य, अदृश्य के उदर में विलीन हो गया। दृश्य, वियोगजन्य व्यथा के अनुभव ने चित्त प्रदेश में आकर, मंत्र जाप की स्थिति से गिरा दिया जौर जापक को प्रलाप कक्ष में बन्दी की भाँति बन्द कर दिया, हृदय के विरह-सिन्धु में भाव की उत्ताल उर्मियाँ उठने लगीं, रोते-चिल्लाते-कराहते हुये अपने को सिन्धु में अस्त होने से न बचा सका यह। हाय ! वहाँ न कोई नाविक, न कोई उस पथ से जाने वाला पथिक ही था, जो इसे डूबने से बचा सकता, परिणाम यह हुआ कि इसका मैं, मेरे के सहित सब समुद्र की तली में बैठ गया। कुछ विलम्ब से रत्न का अन्वेषण करने वाले दो पनडुब्बी, उस रत्नाकर में डूबकर, इसे रत्न की राशि समझ शीघ्र वहाँ से निकाल लाये और इस पर, मुग्ध होकर, उन दोनों ने अपने कण्ठ का आभूषण बनाने का संकल्प कर लिया। पनडुब्बी दोनों बहुत अच्छे थे, उनको देखकर लगने लगा कि वह समय कब दृष्टि में आयेगा, जब सतसंग की शान में चढ़ाकर, अपने मनोज्ञ रत्न में निखार अर्थात् तेज लायेंगे तथा अपने गले में कौस्तुभ मणि के समान ये उसको धारण करेंगे। पनडुब्बियों ने विरह के समुद्र से निकालकर, उसी कक्ष में अपने रत्न को स्थापित कर दिया और समय से अलंकार बनाने का वचन देकर, न जाने कहाँ चले गये।

द्रष्टा ने इधर-उधर देखा कहीं न देख पाया। कुछ देर में उसे अर्द्ध चेतना हुई किन्तु सिन्धु का कोलाहल अपनी ओर पुनः आकर्षित करने में लगा था, इतने में अपनी प्राण-प्रिय-तरा अनुजा किशोरी कक्ष के बाहर माँ के साथ आ गईं, उस समय किशोरी जी चतुर्थ वर्ष की अवस्था का अति-क्रमण कर रहीं थीं, भैया ! भैया पुकारने लगीं, श्रवण में शब्द पड़ते ही, इसकी वह अवस्था छूमन्तर हो गई। स्वस्थ मन से कपाटोद्घटन-क्रिया को करके माँ के चरणों में, इसने प्रणाम किया और भ्रातृ-वत्सला अपनी

किशोरी को अंक में लेकर, आँखों में आये अश्रुओं को पोंछकर खूब दुलार किया। पूंछा क्यों रो रही थी ?

"आप समय से अपना नियम करके नहीं उठे, विलम्ब होने से आपकी अनुजा से, आपके दर्शन व प्यार-प्राप्ति के बिना नहीं रहा गया अतः मैया यहाँ ले आई हैं।" किशोरी ने कहा।

"ललन ! चलो, विलम्ब हो गया है, किशोरी भी भूखी है, तुम्हारे साथ पाने में ही इसकी भूख मिटती है।" मैया ने प्यार से अपने हृदय में लेकर कहा।

यह निमिकिशोर चलकर रसोई भवन में किशोरी सहित भगवत प्रसाद का सेवन किया।

क्यों ? आप उन पनडुब्बियों को समझ गई होंगी न ? लक्ष्मीनिधि जी के मुख से राम मन्त्र की महिमा हृदयङ्गम करके श्रीधर कुँवरि ने प्रेम-भरी गद्गद् वाणी में कहा कि, "जिसे आप समझ चुके हैं, वह ज्ञान आपश्री की आत्मा में आ जाना न असंभव है न आश्चर्य है।"

कुछ और सुनाने की प्रार्थना कर, करबद्ध नत-मस्तक हो गईं।

× × ×

२०

दासी के सर्वस्व ! आपश्री के शरीर के रोम कूपों से श्री राम, राम, राम, राम, राम, राम की मधुर ध्वनि श्रवणों की सुखद विषय बनी सहज अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। शयन-शय्या में सोते समय प्रायः श्रवण करने का सौभाग्य संप्राप्त होता रहता है। कहीं आपश्री जग न जाँय, इस आशंका और भय से, आपकी ध्वनि के साथ स्वमुख से राम नाम की मधुर ध्वनि, ध्वनित नहीं कर पाती, अमृतानन्द का घोल, अतृप्त कर्णों को पिलाती रहती हूँ अन्यथा मन के मानसरोवर में उमङ्ग की उर्मियाँ उठ-उठकर कहा करती हैं कि तुम तो सहधर्मिणी हो अतएव अपने प्राणवल्लभ के सर्व शरीर विनिश्रित राम नाम की ध्वनि में, अपनी मुख मुखरित ध्वनि को मिलाकर, तुम भी योग निद्रा में विलीन हो जाओ। शरीर संजात उस ध्वन्यात्मक राम नाम में कुछ और ही चमत्कार का दुर्लभ दर्शन सुलभ होता है श्रवणवन्त को। सुनने वाले को कुछ ही क्षणों में, समाधि की उच्च स्थिति वरण कर लेती है, कि पुनः जिसके सम्पूर्ण शरीर से राम नाम अहर्निशि निकल निकलकर, निकटवर्ती प्रान्त को राम नाम के अर्थ में स्थित कर देता हो, उसके स्थिति के विषय की वार्ता !

अहो ! वह कहाँ रहता है ? किस स्थिति में रहता है ? क्या अनुभव करता है ?...... जानना अन्तःकरण का विषय नहीं है, हाँ ! अनुभव-गम्य अवश्य है किन्तु अनुभव वही कर सकता है, जिसे इस त्रिगुणातीत स्थिति ने स्वयं वरण किया हो। दासी की तो ऐसी मान्यता है कि भक्त के हृदय बिहारी भगवान, अपने भक्त की भावना जनित स्थिति के बाह्य ज्ञान का अनुभव भले ही अन्तर्यामी, अन्तरात्मा होने से कर लेते हों, इसमें उन्हें कोई आपत्ति आड़े न आकर, उनके अखण्ड को यथातथ्य बनाये रहने में विघ्न उपस्थित न करती हो, परन्तु भक्त को वियोगावस्था में राम-राम कहने, राम रूप दर्शन करने, श्रीराम लीला चिन्तन करने और धाम की प्रीति में जिस आनन्द की अनुभूति होती है, उसका अनुभव भगवान को किसी के विरही भक्त बनने पर ही हो सकता है अन्यथा असंभव है।

दिन में भी जब कभी अन्य सेवा के अवसर की अप्राप्ति दशा में, आपश्री के समीप बैठकर, आपके प्रसन्नतार्थ मन-वाणी या शरीर से सेवा करने का सौभाग्य सुलभ होता है, तब आपश्री के विग्रह लोम कूपों से राम नाम की ध्वनि स्पष्ट सुनाई देती है, शान्त चित्त होने पर।

उपर्युक्त विषय के अतिरिक्त आपश्री के काय-वैभव में विशिष्ट-वैशेष्य-विवर्धक राम नाम को सर्वाङ्गांकिता दर्शन करने का जब तब सुअवसर आपश्री की कृपा से, आपकी अर्द्धाङ्गिनी को हो जाता है तथा हृद्देश में दर्श सम चर्म के अन्दर श्री सीताराम की युगल मूर्ति का प्रतिबिम्ब नित्य नेत्रों का विषय बनता है अतः शिर नत सम्पुटाञ्जलि प्रार्थना है कि यदि अधिक रहस्यमय गोपनीय वार्ता न हो तो कृपा कर दासी से उस साधन की समाख्यायिका कहें, जिससे रोम-रोम से राम-नाम की ध्वनि. राम-नामाङ्कित देह और हृदय-प्रदेश में श्री सीताराम की मूर्ति-प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई है।'' श्री लक्ष्मीनिधि बल्लभा ने आश्चर्य चकित जिज्ञासा के साथ कहा।

''अहो ! यह स्थिति साधन शून्य अकिंचन, प्रपत्ति पथ परायण प्रभु-प्रेमी को, परम प्रेमास्पद परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान की अनाख्येय अकारण अनुकम्पा से ही संप्राप्त होना संभव है। साधनों के सागर का सम्पूर्णतः अवगाहन करके भी उक्त रत्न न कर में आते और न आँख का विषय ही बनते। श्री हरि, गुरु, सन्त-कृपा की जय हो, जय हो परन्तु कृपा के दर्शन का अधिकारी पात्र वही होता है, जो भगवान के भास्वती भगवती कृपा की बाट अहर्निशि जोहता रहता है, जिसे अन्यालम्बन स्पर्श नहीं कर पाता, अन्यालम्बन एवं अन्य प्रयोजन से विरक्ति, सर्व समर्थशाली भगवान के नामार्थ

सहित नाम जपने से होती है तथा नाम जप में अनुरक्ति आचार्य प्रसाद से होती है, आचार्य-प्रसाद, आचार्य की उस सेवा से सुलभ-होता है जो सर्व समर्पण के साथ अमायिक और अनुवृत्ति एवं आचार्य-देह-चिंता तथा आसक्ति पूर्ण सद्गुरु प्रसन्नतार्थ होती है, प्रसन्नाचार्य के प्रसाद से भगवत—प्रसाद पाने में विलम्ब नहीं होता। भगवान की प्रसन्नता से (प्रसाद) अध्यात्मादि प्रसाद प्राप्ति सर्वभावेन सहज सिद्ध हो जाती है। आचार्य प्रसाद एवं परब्रह्म परमात्म-प्रसाद से कुछ पाना शेष नहीं रहता, सब पाया हुआ और सब जाना हुआ हो जाता है।

आचार्य-आश्रम में आचार्यश्री स्वयं ब्रह्म जिज्ञासुओं के मध्य आश्रमानुकूल आसन में सूर्य-प्रभ समासीन थे। सतसंग की समाप्ति पर वे कृपालु, इसे आश्रम की पुष्प-वाटिका में अकेले लेकर गये और वहाँ एकान्त में बैठकर दास को अपने सम्मुख समीप बैठा लिये अति प्रसन्न योगिवर्य श्री याज्ञवल्क्य जी महाराज ने कहा—''वत्स ! कुँअर तुम हमारे सभी शिष्यों में सर्वश्रेष्ठ हो। तुम्हारे समर्पण, आज्ञानुवर्तन और कैंकर्य नैपुण्य ने, मुझे तुम्हें अपना सर्वस्व प्रदान करने के लिये बाध्य कर दिया है। राजकुमार ! तुमने ब्रह्म-विद्या का अध्ययन यथाविधि सम्यक् रूप से साकल्यतया कर लिया है एवं उस विद्या का अनुष्ठान करके, ब्रह्मविद वरिष्ठ ही नहीं अपितु ब्रह्म का साक्षात् अनुभव करके ब्रह्म स्वरूप हो गये हो। ब्रह्म के युगपद उभयात्मक अर्थात् निर्गुण-सगुण स्वरूप का भली-भाँति तुम को ज्ञान है तथा तुम्हें सगुण-साकार ब्रह्म के रहस्यार्थ का ज्ञान-रत्न जो आचार्य हृदय-कोश में निहित है, उसे देना चाहता हूँ।'' कहकर आचार्य श्री ने कहा कि आओ और समीप आओ।

इसने चरणों में मस्तक रखकर प्रणाम किया, आचार्य श्री अपने विनीत मुद्रा में स्थित शिष्य के मस्तक में अपना अभय प्रदायक कर-कमल रखकर ध्यानस्थ हो गये, कुछ ही क्षणों में कृपा-पात्र को अनुभव होने लगा कि एक तेज राशि, ब्रह्म-रन्ध्र से प्रवेशकर, सुषुम्ना मार्ग से हृदय में स्थित होकर, द्विधा-रूप में अर्थात् राम-सीता के रूप में परिवर्तित हो गई, उस मन-मोहिनी मधुर झाँकी में मुग्ध मन, अमन होकर समाधि संज्ञा को प्राप्त हो गया। कुछ समय के पश्चात् आचार्यश्री ने प्रकृतिस्थ करके कहा, कि ''तुम्हारे जन्मकाल से ही हृदय में युगल-मूर्तियों के प्रतिबिम्ब कभी-कभी निजी लोगों को अपनी झलक दिखाकर आश्चर्यान्वित कर देते थे किन्तु आज प्रतिबिम्ब में बिम्ब समाविष्ट हो गया है, अब जब तुम चाहोगे तभी

युगल मूर्तियों का साक्षात् दर्शन ध्यान की आँखों से कर सकोगे, स्पर्श, वार्तालाप लीला आदि के दृश्य भी तुमसे अदृश्य न रहेंगे।"

"गुरु—प्रसाद प्राप्त कर कृतार्थ हो गया" कहते हुए प्रेमाकुल चरणों में लिपट गया यह, आचार्यश्री ने उठाकर अंक में ले लिया, हृदय से लगाकर शिर सूँघा पुनः अपने अलभ्य अनेक आशीर्वादों से युक्तकर कहा कि, "जो तुम्हारे हृदय में प्रतिष्ठित हैं, यही पूर्णतम परब्रह्म परमात्मा अनादि जगत् का अभिन्नोपादान निमित्त कारण हैं। इन्हीं में योगिवर्य रमण किया करते हैं, जिससे इन्हें राम कहते हैं, वाच्य-वाचक अभेदेन राम नाम और राम में किंचित् भेद नहीं है। देखो, जिस प्रकार से तुम्हारे हृदय में साकार ब्रह्म राम, अपनी आह्लादिनी शक्ति से स्थिति हो गये हैं, उसी प्रकार सद्गुरु-वाक्यों को सत्यता प्रकट करने के लिये, तुम्हारी देह राम-नामाङ्कित हो जायेगी और रोम-रोम से राम-राम की ध्वनि निकलकर, अधिकारी लोगों के दर्शन-श्रवण का विषय बनेगी। वत्स ! र रंकार की ध्वनि यद्यपि सभी के अन्तर्देश में होती है किन्तु उसका ज्ञान बिना राम नाम के अनुराग पूर्ण जाप तथा बिना सद्गुरु प्रसाद के दुर्लभ ही नहीं अपितु अप्राप्य रहता है। परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान ने तुम्हारा वरण कर लिया है, इसलिये बाल्यावस्था से राम नाम में व राम रूप में अमित अनुराग स्थित हो गया था। सद्गुरु कृपा को साक्षात् करने का सेवा-साधन भी तुम जैसा मुझे अन्यत्र नहीं दीखता।"

"हे प्रभो ! आपश्री ही इसके साधन-साध्य हैं। इसमें जो कुछ दीखता है, वह सब कुछ आपश्री का ही वैभव है। आपश्री ने अपनी अहैतुकी कृपा से, इसे उसी प्रकार बनाया है जैसे कुशल कलाकार कु-काठ को, गढ़-छोलकर मानवाकृति प्रदान कर देता है। अहो ! धन्य है आचार्य चरण की महती अनुकम्पा को।"

इस प्रकार के वाग्विसर्ग के अनन्तर राम-राम कहता हुआ, हृदयस्थ युगल मूर्तियों के ध्यान में, अपने आप स्थित हो गया, यह निमिकुमार आधे मुहूर्त में आचार्य-संकल्प से प्रकृतिस्थ हुआ तो अपने उद्धारक ज्ञान-गुरु का आशीर्वाद प्रत्यक्ष इन्द्रियगोचर हो गया। मधुर-मधुर राम नाम रोम कूपों से निकलकर श्रवणगोचर होने लगा तथा सम्पूर्ण शरीर राम नाम से अंकित होकर, नेत्र का विषय बनने लगा।

आचार्यश्री अति प्रसन्न होकर करने लगे कि, "सुनो, नृपनन्दन ! तुम्हीं नहीं, तुम्हारे समान आचार्य अनुरक्ति एवं उनकी कैंकर्य परायणता के

साथ जो परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान के नाम रूपात्मक सगुण-साकार स्वरूप में अनुरक्त होंगे, अर्थानुसन्धानपूर्वक सतत राम नाम का उच्चारण करेंगे, वे सब राम नाम के प्रभाव से राम रूप हो जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं है।" अस्तु......

अब आप अपनी शंका का समाधान पूर्ण रूप से पा गईं होंगी।

अपने प्राणेश्वर के मुख से रहस्यमयी वार्ता श्रवण कर, कृतार्थ हो गई, सिद्धि कुँवरि ने कहा। आगे कुछ श्रवण करने के लिये सप्रेम तत् मुद्रा में स्थित हो गईं।

× × ×

२१

कलकल नाद करती हुई, कमला की धवल धारा पर्वतीय किनारों के बीच, श्वेत बीचियों से सुशोभित प्रवहमान हो रही थी। जैसे श्वेत वस्त्राभूषण-भूषिता, श्वेत चमर शिर सेविता एवं दो अंग रक्षकों से सर्व-भावेन रक्षिता कोई दिव्य देवी भूमि के वृहद सरोवर में तैर रही हो। किनारों के रमणीय वन-वृक्षों के समूह ही, नर-नारी की समाज बनकर, दिव्य देवी का दर्शन करने के लिये एक पद से खड़े थे, अपने-अपने मस्तक में पुष्पों की उपहार टोकरी रखे हुये। वृक्ष-शाखाओं की नवल नायिकायें, पवन के प्रसंग से हिल-डुल कर, स्वच्युत प्रसूनों से धारा की धवल परि-धानी में विविध रंग के फूल काढ़ रही थी अथवा पुष्प समर्पण कर, साञ्जलि नत कन्धरा शीश झुकाकर प्रणाम कर रही थीं। वृक्षों की छाया की केशावलि देवी के नितम्ब तक छूटी हुई, बड़ी सुन्दर सुहावनी लग रही थी, जिसमें उर्मियों के सफेद मुक्ता विनिर्मित गुच्छे जहाँ-तहाँ गुम्फित थे, किनारों पर लहरों की लहरान, उसके श्वेत पट की फहरान थी, वन-सुमनों की सुगन्ध, देवी के सुगन्धित शरीर की परिचायिका थी। शीतल-मन्द, सुगन्धित वायु का बहना, देवी पर पवन देव का वींजन चलाना था। सूर्य-किरणों का प्रकाश नदी में पड़ना ही, सूर्यदेव का अपने करों से देवी को दर्पण-दर्शन कराना था। उर्मियों से निकलकर बूँदों का तटवर्ती भूमि में पड़ना, वरुण देव के द्वारा, देवी के दिव्य वपु पर इत्र का सिंचन करना प्रतीत होता था। यत्र-तत्र जलस्थैर्य देश में दिन पति के प्रतिबम्ब की झलक का दर्शन अग्निदेव के द्वारा मशाल दिखाने का दृश्य उपस्थित कर रहा था। नदी का नाद ही वज्र के घड़घड़ाहट के साथ, वज्रधारी का दिव्य-देवी की रक्षण सेवा में खड़े होने की सूचना थी, धार में भ्रामरी के बीच

में बहती वस्तुओं का विलीन हो जाना कुबेर का धन-राशि भेंट देना था दिव्य देवी को। बन प्रदेश के मोर, कोयल, पपीहा, लावा, तीतर आदि पक्षियों का कलरव दिव्य देवी का दिव्य स्तवन था, नदी के जीवजन्तु ही उस देवी के दासी-दास थे। प्रकृति-नायिका नख-शिख सुन्दर शृङ्गार किये हुये, दिव्य देवी के सम्मुख नृत्य करती-सी प्रतीति का विषय बन रही थी, वन्य-मृगों की गम्भीर बोली वाद्य-ध्वनि थी और वायु के सम्बन्ध से समुत्पन्न पादप-पल्लवों की शब्दावली नटी के पद-विन्यास से नवल नूपुरों की बजनि प्रतीत होती थी।

"सुहावना स्वर्णिम समय था। रथ की सवारी से कमला किनारे श्याल-भाम, अपने-अपने अनुजों और सखाओं समेत उतरकर कमला-किनारे-किनारे बिहार करने लगे। मिथिला की वनश्री का अवलोकन कर-करके सभी हर्षोत्फुल्ल हो गये।" अहो ! यह कमला अपनी पर्वतीय किनारों से युक्त कैसी श्री शोभा से सम्पन्न हो रही है, जैसे स्वर्गलोक में सुरभित सुमन युक्त वृक्षों की युगल अवलियों के बीच बहती हुई सुर-सरिता। वन-प्रदेश भी नन्दन के श्री का अपहरण करता हुआ-सा प्रतीत हो रहा है।" रघुनन्दन ने कहा।

"जनश्रुति से सुना है कि इन कमला नदी के रूप में साक्षात् विष्णु-प्रिया कमला ही, अपने अंश स्वरूप से बह रही हैं। इनके मज्जन, स्पर्श से मनोऽभिलषित पदार्थों की प्राप्ति होती है। ये अघनाशिनी हैं, इनका दर्शन व्यर्थ नहीं जाता। हमारे कुलगुरु शतानन्द जी महाराज, कमला-महात्म्य सुनाते समय श्री कमला जी की भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते हैं। इनमें स्नान करने से विष्णु लोक की प्राप्ति बतलाकर, सबके हृदय में इनके प्रति श्रद्धा-प्रीति उत्पन्न कर देते हैं।"

"सखे ! धन्य है कमला जी की महामहिमा को। चलें, हम लोग भी इनके जल को शिर में लें और पानकर अपने को पवित्र करें।"

"अवश्य चलें, आपश्री ! तभी इन कमला जी की महिमा के मस्तक में मुकुट बँधेगा।" कहकर भाम के पाणि पंकज पकड़े हुये श्याल ने, स-समाज एक रमणीय सुन्दर घाट पर जाकर, जल-स्पर्श आचमन और प्रणाम किया। रघुनन्दन के कमलाभिवन्दन-समय, उनके शिर पर पुष्प वर्षते देखकर, सब कमला जी की जै-जै कहने और प्रेम पूर्ण सभी सानुज राम रसिकेश्वर की जय एक साथ बोलने लगे, पुनः ऊपर आकर सामयिक सुन्दर

आसनों में स-समाज श्याल-भाम बैठ गये और लगे कमला की दिव्य धारा का दर्शन करने, सभी आनन्द विभोर हो रहे थे !

श्री कमला जी अपने तटस्थासीन सीताकान्त के दर्शन जनित हर्ष का परिचय, ऊँची-ऊँची उर्मियों और कल-कलनाद तथा त्वरावति सम्प्रवेग शीला धवल धारा के द्वारा दे रहीं थीं। अपनी धार पर बहते पुष्पों को, जल के सहित उछालने की प्रक्रिया से, अपने अपूर्व प्राणातिथि को पाद्य-समर्पण के साथ, पुष्पाञ्जलि समर्पित कर-करके अनेकों बार प्रणाम कर रहीं थी हम सभी हर्ष की समाधि में मग्न से हो गये थे……

इसी अवसर पर देखा कि एक सर्वाङ्ग सुन्दरी सर्वाभूषण भूषिता देवी हाथ में कमल लिये हुये, स्व सखी सहेलियों के साथ रसिकेश्वर राम के सम्मुख खड़ी हैं, हम सबके निम्ननयन भूमि की ओर लग गये किन्तु मन उस अपरिचित अबला के तेज से प्रभावित होकर, प्रणाम करने को मचल पड़ा।

सर्व समाज ने साञ्जलि प्रणाम किया, "देवि ! आप मानवी न होकर उमा-रमा-ब्रह्माणी अथवा शची-शारदादि देवियों में कौन हैं ? अपना परिचय देने में कोई आपत्ति तो नहीं है ? कहाँ से आप, हम सब को अपना दर्शन देने के लिये पधारी हैं ?" पाणि-पङ्कजों को सम्बद्ध करके विनयावनत वैदेही-वल्लभ ने पूछा।

'देवाधिदेव पुरुषोत्तम ! कमल गंध वपु वाली तथा कमलोद्भवा और कमलहस्ता होने से, मेरा नाम कमला है। मैं ही अपनी अंशोद्भवा विख्यात कमला नदी हूँ, मैं ही कमला नाम से विख्यात, श्री सुनयनानन्द वर्धिनी जू की सखी भी हूँ। छद्म वेष में मैंने ही आपश्री की विवाह-विषयक-प्रक्रिया के समय कोहवर भवन में, उमा व ब्रह्माणी के साथ जाकर, वहाँ के हास-विलासादि से उत्पन्न रस की अनुभूति की थी। आज आपश्री ने मेरे में अवगाहन करके, मुझे कृतार्थ कर दिया, आपश्री के पाद-पाणि और मुख का स्पर्श पाकर, मैं सौभाग्य की अन्तिम सीमा सिद्ध हो गई। आपश्री की जय हो जय हो, जय हो। ····· कहकर देवि ने अभिवादन किया और श्री रघुनन्दन राम की मूक कृपा को प्राप्त कर, सरिता में प्रवेश करते ही अदृश्य हो गईं अहो ! आनन्द ······ ! आनन्द··· ·· !! आनन्द··· ·· !!! आज की रथ-यात्रा सफल हुई। निमिकुमार ने कहा समाज ने समर्थन किया।

पुनः समाज के सहित श्याल-भाम ने, सिद्धि-सदन में प्रवेश किया।

उस दिन आपसे यद्यपि यह चर्चा करनी थी तथापि अन्य चर्चा के कारण न बताकर, आज अपनी वल्लभा के कर्णों तक पहुँचा सका हूँ।

अपने पति-परमेश्वर से यह कथा श्रवणकर कुँअर-वल्लभा की श्रद्धा कमला जी के प्रति अधिक वर्धमान हो गई, पुनः करबद्ध प्रार्थना करके कथा-श्रवण करने की मुद्रा में स्थित हो गईं वे।

× × ×

२२

श्री निमिकुल के आचार्य योगिवर्य श्री याज्ञवल्क्य जी का यह आश्रम कदलीवन-वन-मण्डित, अखण्डित श्री शोभा से सम्पन्न परम रम्य प्रतीत हो रहा है। अहो ! चतुर्दिश के आम्रवन आश्रम के अनुकूल यथा स्थान लगे हुये, आश्रमवासी ब्रह्मचारियों, गो-वत्सों और मृग-शावकों को रमने के लिये सहकारी साधन स्वरूप सिद्ध हो रहे हैं, विविध प्रकार के वृक्ष-फलभार से झुके हुये, जिस किसी महत्वाभिमानी को विनयशील बनने एवं सबके प्रति झुकने का पाठ पढ़ा रहे हैं। देखिये········विविध प्रसूनों से युक्त ये पुष्प-वाटिकायें, नख-शिख वस्त्राभूषणों से अलंकृत नवल-नायिकाओं के समान दृष्टिगोचर हो रही हैं।

अहो ! यत्र-तत्र मृगों के बच्चे कैसे कोमल-कोमल दूर्वादल को मुख में लेकर, हम लोगों की ओर आकृष्ट दृष्टि से दृष्टिपात कर रहे हैं। ये गो-वत्स चौकड़ी भर-भरकर, कैसे उछलते-कूदते हुये वन-विहार कर रहे हैं, जैसे सर्व प्रकार की चिन्ता से हीन प्रपत्ति पथ के पथिक जगत विचरण करते हैं, सुरधेनु के समान ये सहज सुन्दर धेनुयें कैसी शोभाशालिनी हैं, ये सब चर्वण-क्रिया करती हुई, ऐसी प्रतीत हो रही हैं, जैसे किसी समर्थ राजा की सर्वाङ्ग-सुन्दरी कई पटरानियाँ ताम्बूल चर्वण करती हुई, अपने पतिदेव की प्रतीक्षा में गृहोद्यान के मध्य खड़ी-खड़ी ध्यान कर रही हों। शुक-पिक-मोर-हंस-चातक-कपोत आदि पक्षी निर्भय होकर, कैसे कलरव कर रहे हैं, जैसे राजगृह में राजाओं के छोटे-छोटे बच्चे परस्पर केलि करते समय किलकिलाते हैं। अहो ! यह आश्रम उस सुरभित प्रदेश-सा प्रतीत हो रहा हैं जिसमें सर्व सौगन्ध समायुक्ता सौगन्धिनी शक्ति निवास किया करती हैं।

देखो, यह यज्ञ-धूम आकाश में उठकर स्वर्ग में चढ़कर जाने के लिये सोपान का सा संविधान बना रहा है। अहह ! यह वेद-ध्वनि कितनी कर्ण प्रिय है, लगता है कि वेद-वेद्य के दर्शन कराने की दूतिका है जो हम लोगों

को उसके दर्शन करने की प्रेरिका सिद्ध हो रही है। अहो ! ये ब्रह्मचारी गण जो ब्रह्मचर्या में निपुण हैं, कैसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे श्रुति-छन्दों ने शरीर धारण कर, अपने दर्शन दान से जगत को पवित्र बनाने का संकल्प लिया हो। यज्ञ वेदी युक्त यज्ञ-शाला, मुनि-शाला आदि लता मण्डित उटजों की शोभा, वृक्षावलियों के बीच यज्ञ स्तम्भों और पताकाओं से युक्त ऐसी लग रही है जैसे देव-विमान किसी पुण्यात्मा को स्वर्ग ले जाने के लिये, उसके यश को पताका द्वारा फहराता हुआ भूमि में उतर आया हो। अहो ! दूधमती गंगा का प्रवाह, परम पावन आश्रम के पैरों को पखार रहा सा प्रतीत होता है। आश्रम की अमरता, विषयासक्त प्राणियों के विष को उतारकर, अमृत बनाने में सहज समर्थ है, आश्रम की रमणीयता का प्रमाण इससे अधिक क्या हो सकता है कि सबको अपनी ओर आकर्षित करने वाला व्यक्ति, आश्रम की रम्यता का दर्शन कर स्वयं रम जाता है।

इस प्रकार कौशिल्यानन्दवर्धन; मुनि-मनरंजन राम की ऋषि-यश-वर्धिका वाणी को सुनकर समाज को बड़ी प्रसन्नता हुई।

"देखिये ! देखिये, रघुनन्दन ! आचार्यश्री सतसंग-शाला में विराज रहे, है जिज्ञासु शिष्यगणों के बीच। लगता है तपोमूर्ति आचार्यश्री के स्वरूप में साक्षात् ब्रह्मा सनकादि ऋषियों के साथ, ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित हैं।"

"अवश्य, अवश्य ! निमिनन्दन की उपमा उपमेय के अनुरूप हैं, क्या मार्तण्ड ! क्या अग्निदेव ! अहो ! इन योगिवर्य श्री याज्ञवल्क्य जी महाराज का मुख-मण्डल तो सूर्य की आत्मा, परब्रह्म परमात्मा के तेज पुंज से दैदीप्यमान हो रहा है, वास्तव में ब्रह्म तेज ही तेज है, जो सब तेजस तत्वों का उद्‌गम स्थान है।"

आचार्यश्री की आज्ञा पाकर, हम लोगों को उनके समीप चलकर, चरणों में प्रणिपात नमन करना चाहिए।

[एक ब्रह्मचारी के द्वारा आचार्य-आज्ञा के अनुसार, युगल-वंश के कुमार शाला द्वार के बाह्य देश से साष्टाङ्ग दण्डवत करते हैं।]

"अहो ! आज हमारे हृदय-बिहारी, अवध-बिहारी व मिथिला बिहारी बनकर, हमारी अन्तर की आँखों में, अपनी योगमाया की यवनिका डाल रहे हैं किन्तु जिन्हें वे एक बार जना देते हैं कृपा करके, पुनः वह इनकी यवनिका के व्यामोह में नहीं पड़ता। देखो तो इनकी लम्बी दण्डवत प्रक्रिया को। भाव में भरकर इनके अंग पुलकित हो रहे हैं, धन्य है इन ब्रह्मण्य देवाधिदेव को।" स्वगत ऐसा कहते हुये ऋषि-प्रवर ने प्रेम के सात्विक भावों

से युक्त होकर, प्रणिपात करते ही सीताकान्त को उठाकर हृदय से लगा लिया तथा धधकती ज्ञानाग्नि को प्रेम-जल के छीटे देकर कुछ शान्त किया, जिससे उन्हें शीतल हृदय के पात्र में माधुर्य-रस भर-भरकर पीने का समय मिल गया, शिर सूंघकर अपने-अनेक आशीर्वादों से श्री राम का आतिथ्य सत्कार किया उन्होंने तत्पश्चात् आश्रम-विधि के अनुसार, हम लोग आचार्य-श्री के संकेत से आसनों में बैठ गये किन्तु रघुनन्दन का हाथ पकड़कर, स्वयं श्री आचार्य ने अपने समीप आसन में बैठा लिया।

निमिकुल में ज्ञानी गुरु आज सर्वस्व-सा पाकर बड़े प्रसन्न हो रहे थे। सभी लोगों ने भेंट समर्पित कर पुनः प्रणाम किया। प्रथम आचार्य देव, जनक-जामाता के चन्द्रानन के चकोर बने पुनः बड़े स्नेह से उनका स्पर्श करके, कुशल है ? खूब कुशल से रहे आप ? ऐसे उन्होंने प्रश्न किये।

''जिसके कुशलता की चिन्ता आप जैसे महापुरुष को है, उस कौशल किशोर का साथ कुशलता कभी नहीं छोड़ती—।'' श्री चक्रवर्तीनन्दन ने कहा।

''कहो रघुवंश-विभूषण ! इन निमिकुल कुमार के हाथ कभी इस अकिंचन ने, तुलसी दल की भेंट भेजी थी, मिली होगी न ?''

''गुरुदेव ! तुलसीदल के ब्याज से आपश्री ने अपना कृपापूर्ण स्नेह भेजा था, राम जिसे पाकर राम कहलाने योग्य हो गया है, जय हो, जय हो, सदा जय हो आचार्य अनुकम्पा-की।''

''राम ! क्या कभी हमारी चर्चा अवध में किया करते हैं, आप ! कि विस्मरण के गर्त में हमें छोड़ देते हैं ?''

''जिसकी चर्चा वेद बार-बार करता है, उसकी चर्चा किसी वेदानुयायी से न हो,, सम्भव नहीं। अयोध्या में तो रघुकुल-आचार्य, स-अन्तःपुर श्रीमान् पिताजी और हम चारों भाई प्रतिदिन प्रातः स्मरण कर पुनः परस्पर आपकी कीर्ति-कथा, कह-सुनकर अपने को पवित्र किया करते हैं अन्यथा आपश्री जैसे महापुरुष की कृपा बिना भवभोग के अतिरिक्त परमार्थ का दर्शन जीवों को दुर्लभ ही रहेगा। आज आपश्री के दर्शन से राम बड़-भागी बन गया।''

''राम ! तुम्हारा नाम स्मरण करके कितनों के भाग्य का सूर्य उदय होकर कभी अस्त नहीं हुआ, न होगा। धन्य है तुम्हारे शील स्वभाव को।''

''महर्षे ! परम पुरुषार्थ क्या है ? दास की जिज्ञासा के ज्वर को

शान्त करने की महती कृपा करें।'' शिरनत सम्पुटाञ्जलि चक्रवर्ती कुमार ने कहा।

''मनुष्य का परम पुरुषार्थ, परम परमार्थ तत्व का सर्वभावेन समनुभव, स्वयं परमार्थ के अतिरिक्त न होकर करना है।''

''भगवन ! परमार्थ तत्व क्या है ?''

''रामैव परमार्थ रूपं कवयः वदन्ति.'' राम !

''मुने ! आपके कहे हुये राम का संकेत, किस अर्थ से सम्बन्ध रखता है ?''

''राजते महीस्थितः यो स रामः' स्वात्मनि रमतेराम 'सर्वेषु भूतेषु रमणात् रामेत्युच्यते', 'स्वेषु जनान् रमयतीति रामः' 'रसोत्पन्नः रासः तस्मिन् मध्ये महिमान्वितः यो स रामः' आदि अर्थ सगुण-साकार लक्षण सविशेष परब्रह्म राम के क्रियापरक हैं और 'रमन्ते योगिनो यस्मिन् नित्यानन्दे चिदात्मनि', 'इति राम पदे नासौ परब्रह्माभिधीयते' यह व्युत्पत्यार्थ निर्गुण-निराकार—निर्विशेष परब्रह्म राम का अक्रिया परक है। परब्रह्म परमात्मा के परस्पर विरोधी उभयात्मक लक्षण (धर्म) स्वरूप सगुण-निर्गुण एक साथ रहते हैं परब्रह्म में, इसलिये ब्रह्म शब्द जैसे उभय (सगुण-निर्गुण) प्रबोधक है; उसी प्रकार उपर्युक्त व्युत्पत्तिअर्थ से सिद्ध है कि ब्रह्म के स्वरूपगत सगुण-निर्गुण, दोनों का अर्थ प्रबोधक राम शब्द है अर्थात् निर्गुण-सगुण दोनों को राम कहते हैं, जो ब्रह्म शब्द वाच्य परम अद्वय तत्व के अन्तर्भुक् तत्व का रहस्यार्थ है जैसे ...... आम्र शब्द है, जो आम्र-वृक्ष और आम्र-फल दोनों का बोधक है किन्तु इन दोनों का रहस्यार्थ, दोनों के अन्तर्भुक् रहने वाला 'आम्र बीज युक्त रस' ही है, जिसके बिना दोनों बिना प्राण के देह के समान हैं अतः ब्रह्म की प्रतिष्ठा की स्थिति, ब्रह्मात्मक जगत में बाहर-भीतर रमने वाले ब्रह्मात्मा राम से है।''

'प्रभो ! तो ब्रह्म और ब्रह्म की आतमा पृथक-पृथक है ?''

''नहीं, नहीं, राम ! ब्रह्म सच्चिदानन्दात्मक है, 'आत्मैव ब्रह्म', 'एषात्मा ब्रह्म' आदि वाक्य ब्रह्म और आत्मा को एक बतलाते हैं किन्तु उस आत्मा में जो अक्रियता और क्रियता की इयत्ता का अन्त न पाना रूप सच्चिदानन्दात्मक धर्म है, सहज शक्ति सामर्थ्य है, उसी को समझाने के लिये आत्मा और आत्मधर्म के समान ब्रह्म और ब्रह्म की आतमा कहा है जैसे अग्नि है और उसका धर्म उष्मा का दर्शन कराना है, यद्यपि ये दोनों एक ही हैं तथापि धर्मी-धर्म भाव से, एक को दो कहकर किसी अर्थ विशेष

को समझाने की प्रणाली पूर्व से चली आ रही है, अस्तु, ऊँकार पद वाच्य परब्रह्म परमात्मा जैसे है, वैसे ही सब में रमने वाला, अपने में सबको रमाने वाला और स्वात्मा में रमने की क्रिया करने वाला, राम पद का वाच्य, परब्रह्म परमात्मा का आत्मारूप आत्मधर्म (स्वरूप) (लक्षण) हैं, जैसे दुग्ध की आत्मा दुग्ध में रमने वाली दुग्ध-मधुरता है वैसे ही ब्रह्म की आत्मा, ब्रह्म के स्वरूप में स्वाभाविक रमण करने वाला ब्रह्मधर्म रूप राम है, जैसे दुग्ध और उसकी मधुरता एक ही है, वैसे ही ब्रह्म और उसके लक्षण-धर्म रूप राम एक ही है, जैसे मधुरता से ही दूध की प्रतिष्ठा है, वैसे ही राम से ही ब्रह्म की प्रतिष्ठा है। जिस प्रकार बिना मधुरता के दुग्ध व्यर्थ है, उसी प्रकार बिना ब्रह्म-धर्म (लक्षण) के ब्रह्म की उपयोगिता सिद्ध न होगी।''

''योगिवर्य ! तो ॐ पद वाच्य ब्रह्म शब्द के अर्थ को ही राम कहते हैं, जैसे वाणी की महत्ता उसके अर्थ से है, वैसे ही ब्रह्म का वृहदत्व ब्रह्म के अन्तर्भुक् रमे रहने वाले राम पद वाच्य तत् ब्रह्म लक्षणों से है।''

''वत्स ! तुम स्वयं बोध-विग्रह हो, स्वयं को समझने में तुम्हें कौन विलम्ब है।''

''महर्षे। आपश्री, जैसे इन निमिकुल भूषण लक्ष्मीनिधि के गुरुदेव हैं, वैसे ही इस दास राम के हैं, अस्तु, जिस प्रकाश आपने इन्हें परब्रह्म परमात्मा का बोध व अनुभव अपरोक्ष कराने की महती अनुकम्पा की है, उसी प्रकार अपनी अहैतुकी कृपा का संचार मुझ दास पर करें।''

''पुरुषोत्तम ! तुम स्वयं अपने से अपनी आत्मा को जानते हो किन्तु तुमने अपना आतिथ्य करने का सुअवसर दिया है इसलिये इस अलभ्य लाभ से वञ्चित क्यों रहूँ। एक दर्पण हाथ में लेकर श्री याज्ञवल्क्य जी ने कहा राम ! देखो, सर्वविधि अलङ्कृत दर्श-संस्थित स्वरूप को। यही ब्रह्म राम है, जो सगुण-साकार ब्रह्म का अर्थ है, जिसके विषय में बहुत प्रकार से विद्वान लोग वर्णन करके भी किंचित ही कह पाते हैं। अब मेरे प्यारे रामभद्र ! आँख झँपकर अन्तर्मुख हो जाओ, कुछ क्षणों के लिये।''

जो आज्ञा कहकर श्री दशरथनन्दन आत्म स्थित होकर, पुनः कुछ क्षणों में श्रीयाज्ञवल्क्य जी के स्पर्श से बाह्य अवनत मुद्रा में स्थित हो गये !

''रघुनन्दन ! भावातीत स्थिति में क्या ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय की पृथक् स्थितियाँ थीं ?

''नहीं, मुने ! त्रिपुटी का विलीनीकरण था।''

"वह अवस्था व वह स्थिति क्या तुम्हारे अन्तर्देश में कहीं बाहर से आकर प्रवेश की थीं।"

"नहीं, ब्रह्मर्षे ! बाह्य वृत्ति के सर्वथा असंग से, उस अन्तर स्वरूप की प्राप्ति व तद्स्थिति अपने आप हो गई।"

"राम ! वही स्वरूप स्थिति निर्गुण ब्रह्म है, जो तुम्हारे अतिरिक्त कुछ नहीं है। जिस निर्गुण-निराकार के अन्तर्भुक उसका अर्थ रमण कर रहा था और अब प्रकट होकर वार्तालाप कर रहा है, वही ब्रह्म के सगुण और निर्गुण रूप का प्रबोधक राम शब्द है, यदि ब्रह्म के अर्थ स्वरूप तुम (राम) न होते तो सगुण-निर्गुण रूप का अर्थ-रहस्य कौन और कैसे समझता ? वत्स ! बताओ, दर्पण में तुम्हीं ने अपना स्वरूप देखा है कि नहीं और भावातीत की स्थिति का भी ज्ञान करने वाले तुम्हीं हो न ?"

"अवश्यमेव प्रभो ! दोनों स्थितियों की स्थिति, दोनों में रमने वाले आपके राम से ही सिद्ध होती है। बाह्य स्थिति न हो तो तद् स्थित पुरुष अन्तर स्थिति का ज्ञान होना असंभव है और अन्तर स्थिति न हो तो बाह्य स्थिति एवं उसका ज्ञान असंभव है, इसलिये सगुण में निर्गुण और निर्गुण में सगुण प्रतिष्ठित है अथवा ये दोनों युगपद परब्रह्म के विशेषण हैं या लक्षण हैं या इनमें जिनके रमने से इनकी संज्ञा सिद्ध होती है, वह राम है।"

"अरे, मेरे राम ! ये सब ज्ञान की वार्तायें कहने में भले बुद्धि की विषय बन जायँ, पर हैं कठिन। मैंने अपने एक प्रिय शिष्य से, सरलतया समझने के लिये एक रहस्यमय बात कभी कही थी, वह यह है कि, जो वेद-वेद्य अर्थात् जो वेद का रहस्यार्थ है, उसे यदि उसके निर्गुण-सगुण उभय लक्षणों से युक्त तत्वतः जानने, दर्शन करने, सेवन करने और उसमें प्रवेश करने तथा उसके अपुनरावर्ती धाम प्राप्त करने की तुम्हारी इच्छा बलवती हो तो उसको मैं या दीर्घदर्शी अन्य मुनि जानते हैं। वह साकेत नगर निवासी चक्रवर्ती दशरथ कुमार के रूप में, दाशरथि राम नाम से प्रसिद्ध है, तदनुसार उस आचार्य-समर्पित शिष्य ने, उस परमार्थ तत्व को आचार्य सहित अपने आधीन कर लिया है, अतएव यदि आपको उस परमार्थ तत्व को जानना है तो गुरुपदिष्ठ ठिकाने पर उसका दर्शन करके उस पर अनुरक्त हो जाइये फलतः वह आपसे अभिन्न रहने में आपत्ति का अनुभव न करेगा, राम ! मैंने जो कहा है, सत्य कहा है, आप अपनी संकोच मुद्रा के अंचल से, अपने को छिपाने का प्रयत्न कर रहे हैं किन्तु जिसकी दृष्टि-किरणें अंचल को फोड़ कर जा सकती हैं, उसके आगे से आपको उस अंचल को हटा लेना

ही अच्छा है। मैं आपका भंडाफोर न करूँगा, आप हमारे मिथिला के मेहमान हैं, क्यों निमिकुल कुमार ! ठीक है न ?''

लक्ष्मीनिधि ने प्रणाम करके मन्द मुसकान के साथ, अपनी मूक स्वीकृति दी।

''आचार्य श्री की वाणीं में यह शक्ति संनिहित है कि वह राई को पर्वत और पर्वत को राई बना सकती है। आप अपने आशीर्वाद से जिस जीव को चाहें, वह ब्रह्म में तदाकार होकर, 'अहं ब्रह्मास्मि', 'सोहं' 'शिवोऽहं' 'रामोऽहं' आदि बोल उठेगा किं पुनः आपका आशीष, अपने प्रिय शिष्य जनक-जामाता राम को आत्माराम या सबमें रमण करने वाला बना दे तो कौन आश्चर्य है ?'' कहकर भाम ने आचार्य श्री के चरणों में शिर रखकर, प्रणिपात किया।

योगेश्वर ने उठाकर साश्रु हृदय से लगाकर कहा—''वेद-वेद्य राम ! अपनी कृपा से मुझे सदा-सदा वरण किये रहना, जिससे मैं निरन्तर आपके सच्चिदानन्दात्मक उभय (सगुण निर्गुण) विशेषणों से युक्त स्वरूप में रमकर, सबमें रमने वाले राम से अतिरिक्त अन्य कुछ न रहूँ।''

कुछ क्षणों तक ध्यानस्थ रहकर आचार्य श्री पुनः मन्द-मन्द मुसुकराते हुए राम का स्पर्श करके—

''अहो राम ! इस श्वसुरालय में आकर अपने श्वसुर के सर्व समर्पण से भी तृप्त न हुए आप ! अन्त में उनके बचे हुए आचार्य-धन को भी बलपूर्वक स्वतन्त्रता का सम्मान करके आपने अपहरण कर ही लिया, इतनी निरंकुशता का व्यवहार ! चेतन-धन के तुम बहुत लोभी जान पड़ते हो, उसका संवरण करना परमोदार के लिये भी असह्य हो गया क्या? अस्तु, जब आपने बलात् ले ही लिया तो मैं भी आपको जनक-जमाई समझकर, सीता के संबंध से स्वयं को स्वयं से सर्मपित किया हुआ मानकर अनेक बार दूसरे के चित्त-चिन्तामणि आदि वैभवों के बलात् लूटने के कुयश से, सीताकान्त को क्यों न बचा लूँ। (लक्ष्मीनिधि के हाथ को राम के पाणि पङ्कजों को पकड़ाकर) लीजिये सांगिता में अपने अधिकार की बची हुई, इस धन-राशि को भी सीताकान्त का परम प्रिय करने के लिये सर्मपित करता हूँ। याज्ञवल्क्य की झोपड़ी गई तो गई किन्तु अब अन्य (मिथिला से अतिरिक्त) किसी ज्ञानी के घर में उसका ज्ञान धन लूटने के लिये दीवाल तोड़कर घुसियेगा नहीं अन्यथा अपना धन तो वह जाने देगा नहीं, उलटे दस वेदान्तियों को बुलाकर आपके माधुर्य-शक्ति को ऐश्वर्य की खाई में लुप्तकर, उसको शिर उठाने का अवसर